सुपर्णा चौटर्जी

वाणी

Birla Institute of Technology and Science, Pilani
Pilani Campus

Prof. Sudhirkumar Barai, Ph.D.
Director & Senior Professor

Message

Clouds come floating into my life, no longer to carry rain or usher storm, but to add color to my sunset sky.

~ Rabindranath Tagore

2020 has been an unprecedented and uncertain year for all of us around the globe. However, what did not change at any moment was the BITSian spirit that our students embraced despite all the challenges they faced. In spite of having a new system of education, exams, and assignment submissions, they did not deter to work on this yearly magazine. Embracing and accepting the change warmly and not disregarding it is a quality that the students of our institution uphold. This shows that no matter how dire the circumstances may become, our students when become alumni will not fear anything and will keep working, for the benefit of themselves and the society as a whole, making their alma mater proud.

Taking this year as an opportunity to grow, our students have come up with this year's edition of yearly magazine, VAANI *वाणी*. Through the magazine, the students are able to show their creative and literary side. This edition holds special importance because of the trying and challenging times under which this issue has been compiled. It is proof of the sheer determination and hard work of our students.

I express my deepest appreciation to the entire team for working relentlessly on VAANI at all times.

Here's to hoping for better times and indeed a happy new year!

Stay safe, stay healthy!

Sudhirkumar Barai

innovate achieve lead

BITS Pilani, Pilani Campus
Vidya Vihar, Pilani 333 031
Rajasthan, India

Tel: (O) +91 1596 242234 / 255221
Fax: +91 1596 244875
Email: skbarai@pilani.bits-pilani.ac.in
director@pilani.bits-pilani.ac.in
Web: www.bits-pilani.ac.in

संपादकीय

बहुत ही हर्ष और स्नेह के साथ आखिरकार वाणी का यह नवीनतम संस्करण पाठकों के लिए प्रस्तुत है। वाणी के पुराने पाठकों ने इस बार इस पत्रिका का स्वरूप अलग पाया होगा। विशेष परिस्थितियों के कारण इस वर्ष वाणी को प्रकाशित पत्रिका स्वरूप में आप तक पहुँचना संभव न हो सका। आशा करता हूँ कि बहुत ही जल्द, वाणी का अगला संस्करण आपको कैम्पस में अपने रूम के दरवाजे के नीचे प्राप्त हो। संपादक के रूप में भी इस साल का अनुभव काफी अलग था। लाइब्रेरी में एक लम्बे वाणी सेशन में पत्रिका का काम पूर्ण करके ANC की चाय का स्वाद कुछ और होता।

वाणी से पिछले तीन सालों से जुड़ा रहकर मैंने यह जाना है कि BITSians की कला पर मजबूत पकड़ है। कला बहुत ही नाजुक विषय है। आखिरी रात बैठकर दसों पेज के assignments लिखना भले ही आसान लगे, पर वार्षिक साहित्यिक पत्रिका के लिए दो पृष्ठ लिख पाना भारी कार्य है। सभी कलाकारों, जिन्होंने हमें अपने लेख व कलाकृतियां भेजे, भले ही उनके लेख किसी कारणवश प्रकाशित न हो पाएँ हो, सभी के प्रति मैं ह्रदय से आभार प्रकट करता हूँ। शब्दों की सीमा के कारण सम्पादन के कार्य में विशेष सहयोगियों के प्रति आभार पत्रिका के अंत में प्रकट किया गया है।

वाणी के प्रमुख उद्देश्यों में, कला और हिंदी को सशक्त करना है। इस वर्ष वाणी के इस उद्देश्य को प्रोत्साहन देने हेतु हमने कुछ नए प्रयास किए हैं। वाणी को उसके पाठकों के साथ एक डिजिटल माध्यम द्वारा जोड़ने के लिए वाणी फेसबूक पेज की शुरुआत की गयी है। जहाँ नियमित रूप से बिट्स से जुड़े लेख व कलाकृतिया साझा की जाती हैं। साथ ही हिन्दी भाषा और भाषियों को कैम्पस पर साथ लाने के लिए वाणी सेशन्स की शुरुआत की गयी। जिससे छात्रों और प्रोफेसरों को एक मंच पर हिन्दी और अन्य स्थानीय भाषाओं के साहित्य पर चर्चा करने का अवसर मिला। हमारा मानना है, कि यह नवीन परिवर्तन वाणी के उड़ेश्यों के सशक्तिकरण को एक नई दिशा देगा।

वाणी अभिव्यक्ति है आनंद की, उन्मुक्त मौज की।
वाणी अभिव्यक्ति है अपनेपन की, अधूरी इच्छाओं और असीम आकांक्षाओं की।
वाणी अभिव्यक्ति है अकेलेपन और संघर्षों की भी।
वाणी उन भावनाओं का इजहार करती है, जिनसे अवगत हो कर भी हम अनजान रहते हैं।
वाणी परिचय कराती है, वक्त के तराजू पर, जीवन के सफर रुपी भार को संतुलित करते हुए, युवा मन के संघर्षों से।
आइए हम वाणी से एक बार फिर से आपका परिचय कराएँ।

पत्रिका के विषय में अपने विचार हमारे फेसबूक पेज facebook-com/VAANIBITSPILANI/ या फिर vaani-bitspilani@gmail-com पर हमारे और अपने मित्रों के साथ जरूर साझा करें।

व्योम चतुर्वेदी
सिद्धार्थ जैन

अनुक्रमणिका

अगर दुनिया गोल है ५

कुछ ख्याल ७

पूर्णता का बोध ९

दस साल बाद ११

मिलेंगे हम १३

अनिद्रा १५

विस्तार १७

नन्ही अप्सरा १९

ताले २१

द टंब्ल पॉण्ड २७

मनघड़ंत २९

पन्ना नंबर ६४ .... ३१

चांदनी ३३

मेरे हिमालय ३५

एक बुरी आदत ३७

बिन मौसम हुई बारिश ३९

धन्यवाद कोरोना कोरोना ४१

एक और वैदेही ४३

हॉस्टल के रंग ४९

दृष्टिकोण ५१

जिंदगी का बोझ ढोता ५३

अगर दुनिया गोल है...

अगर दुनिया गोल है तो मेरा जीना व्यर्थ है।
क्योंकि अगर समुद्र से भाप बनकर उड़ने वाली
बादलों में मिलकर, गगनचुम्बी पर्वतों पर बरस ने वाली
ऊँचाई को अपना लक्ष्य, और ऊपर बढ़ते रहने को अपना रास्ता समझने वाली,
उस हर बून्द को पहाड़ों से बहकर, वापस समुद्र में ही आ मिलना है,
तो हाँ! मेरा जीना व्यर्थ है, अगर दुनिया गोल है तो मेरा जीना व्यर्थ है।

क्योंकि अगर दुनिया गोल है, तो मंजिलों का कोई औचित्य ही नहीं,
कहाँ से आए हैं और कहाँ को जाना है, कुछ भी परिभाषित नहीं।
क्योंकि दाएँ जाने वाला बाएँ पहुँचेगा और बाएँ जाने वाला दाएँ,
ऊपर जाने वाला नीचे पहुँचेगा, और नीचे जाने वाला ऊपर।

झूठ कहते है लोग कि जीवन का लक्ष्य आगे बढ़ते जाना है
मुश्किलों से न हार–कर ऊपर चढ़ने जाना है।
क्योंकि ऊपर चढ़ते–चढ़ते एक अंतिम छोर आता है,
जहाँ से लौटकर सभी को वापिस आना है।

उस अंतिम छोर पर जो भी पहुँचा उसने पाया है,
कि समाज और लोगों ने अब तक उसे बुद्धू बनाया है।
कहीं पहुँचने के चलने वाले कभी कहीं नहीं पहुँचते,
क्योंकि दुनिया गोल है, और घूम–कर सभी को वापिस वहीं आना है।

——व्योम चतुर्वेदी

कुछ ख्याल

जब मैं 10 साल का था, तब मैंने एक चित्र बनाया था। वह चित्र एक हवेली का था। एक बहुत बड़ी हवेली, जिसमें मैं, एवं कोई भी और गुम हो जाए। जिसमें इतने कमरे थे कि कोई उस हवेली की मंज़िलें न गिन सकता हो। और आज जैसे ही मैंने मेरी आँखें बंद की, मेरे सामने आकाश में समा रही वही हवेली थी।

मेरे बहुत आवाज लगाने के बाद भी किसी ने जवाब नहीं दिया, शायद यह हवेली खाली है। मेरे लिए इससे अच्छा मौका क्या हो सकता है। मैं दरवजा खोलता हूँ, और एक ठंडी पुरवई मेरे चहरे को स्पर्श करती है, मानो जैसे बड़े समय बाद अपने ही घर लौटने पर मेरा स्वागत हो रहा हो। चमकीले फर्श को देखकर मेरी आँखें एक पल के लिए चैंधिया जाती हैं। वहाँ एक बड़ा सा सोफा रखा हुआ है, पर मेरे पास इतना समय कहाँ कि मैं आराम फरमाऊँ, इसलिए मैं आगे बढ़ चलता हूँ। लेकिन अचानक मेरी नजर दीवार पर टंगी एक घड़ी पर पड़ती है। जब मैं उस घड़ी को निहारते हुए उसे घूर रहा होता हूँ, अचानक ही मुझे उस घड़ी में मेरी दादी का चेहरा दिखाई पड़ता है। मैं भौचक्का रह जाता हूँ, और वहाँ से तेजी से भाग जाता हूँ। अपने सामने के पहले दरवाजे को खोलकर मैं सीधा एक कमरे में घुस जाता हूँ। पहले की उस विचित्र घटना से अब तक उबर भी नहीं पाया हूँ, कि मुझे इस कमरे में चारों ओर पर्दे ही पर्दे दिखाई देते हैं। मैं पर्दा हटाकर जैसे ही उसके पीछे देखता हूँ, तो मुझे दीवार में छेद दिखाई पड़ते हैं, मानो गुस्से में किसी ने दीवार पर जोर-जोर से अपने हाथों से वार किया हो। अचानक से मेरे हाथों से खून आने लगता है। कहीं मैंने ही तो इन दीवारों पर गुस्सा निकालकर ये छेद तो नहीं किए?

डर से काँपता हुआ, मैं भागता भागता अगली मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ जाता हूँ। यहाँ मेरे चारों ओर दर्पण मौजूद हैं। निश्चित तौर पर इनके साथ भी कुछ न कुछ विचित्र अवश्य ही होगा। पास जाकर देखने पर मैं पाता हूँ कि हर दर्पण में एक धुंधला प्रतिबिंब है। ये सब तो मेरे भविष्य के सपने हैं, जो अब तक अधूरे हैं। मेरे बहुत प्रतीक्षा करने के बावजूद उनमें से एक भी प्रतिबिंब स्पष्ट नहीं होता है, और अचानक से कमरे की घड़ी की आवाज तेज होने लगती है। मैं जैसे ही उस घड़ी की ओर मुड़ता हूँ, मुझे दोबारा मेरी दादी का चहरा दिखाई देता है। कहीं मेरी दादी हमेशा की ही तरह, इस बार भी मुझे समय का सदुपयोग करने का पाठ तो नहीं पढ़ा रही हैं?

मैं इस वक्त इतना ज्यादा डरा हुआ हूँ कि मैं उस कमरे से तेजी से भाग जाता हूँ। मुझे इस हवेली के भूगोल का कोई भी अंदाजा नहीं है, लेकिन मेरे पैर अपने आप एक कक्ष की ओर तेजी से दौड़ रहे हैं। मैं इस कमरे तक पहुँच तो गया हूँ, पर अजीब बात यह है कि इस कमरे का दरवाजा बंद है। डर के मारे मैं तेजी से चिटखनी खोलता हूँ, और उस कमरे में घुस जाता हूँ। यह कमरा अब तक का सबसे बड़ा कमरा है, लेकिन इसमें कहीं कोई पर्दे नहीं हैं, और ना ही कोई आईना है। मैं चैन की सांस लेता हूँ, लेकिन अचानक ही मेरे सामने एक हरे रंग का साँप दृष्टव्य हो उठता है। मैं उससे दूर भागता हूँ तो मुझे मेरे पापा की वो बेल्ट दिखाई देती है, जिससे बचपन में, वे मुझे बदमाशी करने पर मारते थे। पास ही मेरे विद्यालय के कुछ पुरानी परीक्षाओं के उत्तरपत्र रखे हुए हैं, जिनमें मेरे कम अंक होने की वजह से मैंने सबसे छुपा रखे थे। अचानक उस कमरे में चमकादड़ों की आवाज आने लगती है, तो मैं कमरे के दूसरे कोने की ओर भागता हूँ। गाड़ी में लगने वाला Driveshaft, Brake Fluid की दो बोतल, और न जाने क्या क्या यहाँ बिखरा हुआ पड़ा है। अकस्मात ही एक

विशालकाय मकड़ी मेरी ओर बढ़ने लगती है, मैं दरवाजे की ओर तेजी से भागता हूँ और बाहर निकलते ही दरवाजा बंद कर देता हूँ ताकि अंदर मौजूद कोई भी चीज बाहर न आ जाए। चिटखनी लगा देने के बाद मेरे मन को एक अजीब सी शांति होती है। कहीं मेरे इस कमरे में घुसने के पहले इसे बंद करने वाला मैं ही तो नहीं था? पिछले कमरे से खौफ में मैं इसी कमरे की ओर अपने आप चला आए, कहीं इसके पीछे कोई विशेष कारण तो नहीं?

दरवाजा बंद करने के बाद शांति अवश्य मिली। अब पहले से थोड़े शांत किन्तु कहीं ज्यादा विकल मन के साथ, मैं अगली मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़कर एक नए कमरे में प्रवेश करता हूँ। इस कमरे में कई सारी तस्वीरें मौजूद हैं। मेरे परिवार के साथ ली गयी selfies , स्कूल और कॉलेज के दोस्तों के साथ की तस्वीरें, मेरे बचपन की तस्वीरें, मेरे खिलौनों की तस्वीरें, इत्यादि। उनमें से एक तस्वीर मैं मेरी जेब में डालने ही वाला होता हूँ, कि मैं देखता हूँ कि मेरी जेब में पहले से ही एक तस्वीर मौजूद है, और इस तस्वीर में मेरी मम्मी हैं। मैं उन दोनों तस्वीरों को वापस नीचे रख देता हूँ, मानो यही उनका असली स्थान हो। निश्चित तौर पर यह मेरा अब तक का सबसे पसंदीदा कमरा था। लेकिन मेरे कमरे से बाहर निकलते ही एक जाहिर सा खयाल मेरे अंदर घर कर जाता है, जैसे मैंने मम्मी की तस्वीर वहाँ रखी है, कहीं बाकी सारी तस्वीरें भी मैंने ही तो नहीं रखी हैं?

खैर, आगे बढ़ते हुए मैं अगले कमरे में जाता हूँ। और यहाँ दीवारों पर मेरी पुरानी कविताएं लिखी हुई हैं। मेरे कुछ पुराने लेख फर्श पर लिखे हुए हैं, और साथ में तबले की मधुर आवाज मेरे कानों में पड़ती है। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैं इस वक्त, इसी कमरे की तलाश में इस हवेली में आया था। मुझे हर लेख और कविता उसे दोबारा पढ़ने की आवाज दे रहा है, लेकिन अचानक ही मेरी आँखें खुल जाती हैं।

शायद पापा किसी काम के लिए आवाज दे रहे हैं। मुझे वाणी के लिए संपादक ने कुछ अच्छा और अलग लिखने को कहा था, लेकिन लगता है आज मेरे पास लिखने की कोई प्रेरणा नहीं है। पर अब मैं जानता हूँ कि मुझे आँखें बंद करके मेरे मन रूपी हवेली में, कौन से कमरे की ओर जाना है। औ हाँ, मैं इस बार शुरुआत के कमरों में जाने का कष्ट नहीं करना चाहूँगा। पर एक सेकंड, ये तो मैं खुद से हमेशा कहता हूँ, फिर भी हमेशा हर कमरे के दर्शन कर ही लेता हूँ। न जाने कब इससे ऊपर उठ पाऊँगा। और न जाने कब ऊपर की ओर भी बाकी मंजिलों का अन्वेषन करने का मौका मिलेगा। सोचता हूँ बचपन में उस हवेली की कुछ ही मंजिलें बनानी चाहिए थी, काम थोड़ा आसान हो जाता।
आया पापा!.........

–प्रखर मुंडे

पूर्णता का बोध

कला एक बोझ है, जो कलाकार को थका देती है, तब नहीं जब वह अपनी कला का प्रदर्शन करता है और लोगों की वाहवाही लूटता है, बल्कि तब जब वो खुद कों ढूँढ रहा होता है संसार की भीड़ में, असहाय सा जब कलाकार का मन अपने भीतर कल्पनाओं के अथाह सागर में हिलौरे ले रहा होता है, तब कला अकेले छोड़ जाती है कलाकार को तड़पने के लिए, अप्रतिम रचना करने के लिए। अपने भीतर उठ रहे तूफानों कों शांत करने के लिए जरिए ढूँढता रहता है एक कलाकार, कभी शायरियां, कभी चित्र, कभी कोई शब्द, कभी तस्वीर। और कला आँख मिचौली खेलती है, मजे लेती है कलाकार के।

पर कलाकार आखिरकार आराधक है माँ सरस्वती का, निकाल ही लेता है युक्ति अपने मन के भाव को व्यक्त करने की। और रचना होती हैं काव्य की, हाँ काव्य। हर एक कला काव्य ही तो है। जैसे कवि अपने काव्य में कोशिश करता है कई रस को निचोड़ कर, अपनी भाव भंगिमाओं कों शब्दों में पिरोने की, उसी तरह हर कलाकार अपनी–अपनी कला से करते है उनके खुद के काव्य की रचना। जितनी भीषण कलाकार की साधना उतना ही उत्कृष्ट कवि का महाकाव्य, चित्रकार की चित्रकारी, गायक का गान, लेखक की कथा–कहानी, नर्तक का नृत्य, वादक का वाद्य, रसोइए की पाक कला, खिलाड़ी का खेल और भी जाने कितने रंग और कितने ही रूप कलाकार और उसकी कला के।

जब कलाकर की मनोकामना उसकी कला के रूप में विदित होती है, तब संतुष्ट होता है वो और रचना होती है प्रेम की।

हर कलाकार की कला पूर्ण होकर ही प्रेम उत्पन्न करती है। तभी तो प्रेम को साधना कहा गया है और वास्तव में हर कलाकार ही प्रेमी होता है जिसकी साधना उसे पूर्ण बनाती है।

नमन है उस प्रेरणा को जो कलाकार को इस साधना करने के लिए प्रेरित करता है, नमन है उस कलाकार को जो नित नए प्रेम रूप प्रस्तुत करता है, अलग–अलग रूप में।

धन्य है, नमन है, उस पूर्णता के एहसास को।
प्रेम को, प्रेमी को, शत–शत नमन है।

– नयन चौरसिया

दस साल बाद

सामने मेज पर बैठे, वो अपनी गहन दृष्टि से मुझे निहार रहा था। उसकी आँखों में बीते दिनों की चमक, जिसके लिए वो उन दिनों जाना जाता था, अब भी मौजूद थी। शायद वो भी मुझे उसी नजर से देख रहा था जिस नजर से मैं उसे देखा करता था। आज मुझे ये एहसास हुआ कि वो भी शायद उसी हिचकिचाहट से घिरा हुआ था, जिसने इतने सालों से मुझे घेर रखा था। दस साल पहले मैं इसे भांप नहीं सका, क्या करता वो वक्त ही नादानी में उलझा हुआ था।

आज, बरसों पुरानी अपनी उस खता को दोहराना नहीं चाहता था, लेकिन अंदर एक घबराहट अब भी मौजूद थी। कहीं ये मेरी कल्पना का कोई प्रारूप तो नहीं, एक सालों से पनप रही अभिलाषा का अदृश्य मायाजाल। ये संपूर्ण दृश्य एक छलावा भी हो सकता था। इन ख्यालों से मुकाबला करते हुए भी ऐसा महसूस हो रहा था जैसे कोई असीम किरण मुझे उसकी तरफ खींच रही हो।

उन दिनों मैंने अपने मन पर काबू पा लिया था। फुसला ला लिया था कि शायद मैं जो चाहता हूँ वह मुझे इस जीवन में कभी नसीब नहीं हो पाएगा। जिस परिवेश में मैं पला बड़ा था, जहाँ मैं अपनी जिंदगी बिताने की सोच रहा था, वह अभी तक प्राचीन रुढ़िवादी विचारधारा में ही अटका पड़ा था। जहाँ सामान्य से अलग होना, मनुष्यता से विभाजित होने के बराबर था।

अचानक उसने मेरी ओर इशारा किया। इस बार मुझे पूरा भरोसा था कि यह कोई भ्रम नहीं है। मेरी कोई अधूरी कहानी, जो अपने आखिरी पृष्ठ के भरे जाने की आस में दम तोड़ चुकी थी, पुनर्जीवित हो गयी। मेरी धड़कन, समुद्र की लहरों की भांति उफान भरने लगी, जैसे कोई लोहार अपने हथौड़े से लोहे को ठोक रहा हो।

थोड़ी देर में जब हैरानी के बादल छटे, और मैंने वास्तविकता से खुद को वापस अवगत कराया, तो मैं अपने आप ही उसकी ओर बढ़ गया। मेरी धड़कन अब भी हलकी तेज थी, मेरी चाल एकदम धीमी, जैसे कि मेरे धीरे चलने से वक्त की गति भी धीमी पड़ जाए। मैंने धीरे से उसका सामान खिसकाया और बिन कुछ कहे वहाँ बैठ गया। मैं कुछ कहने की कोशिश करने ही वाला था कि उसी वक्त उसने भी कुछ कहने की कोशिश में होठ चलाए और शायद ये सोचते हुए कि मैं कुछ कहने वाला हूँ, विनम्रता से रुक गया। मुझे इस बात पर शर्म आने लगी और उसने भी हलके शर्म से पलके झुका ली। फिर उसने मेरी ओर पंलट कर देखा तो उसकी आँखें नम थी। उसके चेहरे की झुर्रियों में उसी बोझ ढ़ोने के निशान थे जिसने सालों से मेरे अंतर्मन को झकझोर रखा था। "मुझे माफ कर देना, उस समय मुझमें साहस नहीं था", उसने भरी हुई आवाज में कहा। उसके शब्दों ने मेरे अंदर बह रही नदी का बाँध तोड़ दिया और आंसूओं की धार मेरे चेहरे की झुर्रियों को भरने लगी। उस एक पल में हम इतने करीब आ गए मानो कभी अलग हुए ही न हो। मेरे सीने में ऐसी राहत महसूस हो रही थी, जो एक माँ को अपने खोए हुए बच्चे के मिल जाने पर होती है। इस संसार में एक व्यक्ति तो ऐसा था जो मेरी तरह मोहब्बत को स्त्री–पुरुष के लिंग भेद में नहीं तौलता था। जो मेरे अंदर छुपे हुए भाव को प्रकट किए बिना ही भाँप लेता था। उसके हाथ में मैंने अपना हाथ रखा, और एक लंबी गहरी सांस ली। ये पल हमेशा के लिए मेरे जहन में कैद हो गया, वक्त सचमुच में थम गया। उस दिन मुझे मेरा हम सफर मिल गया।

–प्रांजल सिंह

मिलेंगे हम

रात की चादर ओढ़े परवान चढ़ा है इश्क,
डर को साथ लिए, जो मीलों चला है इश्क।
आसमान में उड़ने को पंख तो फैलाने होंगे,
खुद के या दुनिया के, दिल किसी के तो जलाने होंगे।

रेत पर जो लिखा करते हैं,
कभी पक्की स्याही से साथ अपना नाम लिखेंगे हम।
किसी दिन, दिन के उजाले में मिलेंगे हम।

जहाँ यह सवाल न हो कि क्यों हम सबसे अलग है?
जहाँ यह बवाल न हो कि हमारी पगड़ी-रैनी क्यों अलग है?

इन रिवाजों के काले बादलों को छोड़,
सतरंगी आसमान की तलाश में निकलेंगे हम।
किसी जगह, किसी पहर, दिन के उजाले में मिलेंगे हम।

अपने अंदर हजारों बुराइयाँ लिए, उल्टा हमें पूछते हैं,
पापी गिरेबान, झूठे मुँह, ये भगवान को पूजते हैं।
ये दूसरे की चिता पर रोटी सेकने वाले,
कब अपने काम से काम रखेंगे?

खैर!
जल्द ही एक रोज, एक दिन, दिन के उजाले में मिलेंगे हम।

..--संस्कार झाझड़ीया

अनिद्रां

तारे क्या गुम होंगे आसमाँ के सारे?
झींगुर क्या चुप होंगे रोशनी के मारे?
चिडियाँ क्या चहकेंगी?
कलियाँ क्या महकेंगी?
सोचता ही रहता हूँ मैं बस इस तरह,
क्या यह नभ रंगेगा? क्या होगी सुबह?

लेटा हूँ मैं, इंतजार है भोर का,
रात के इस जहाँ के उस ओर का ।
नींद भी न आती है,
रात भी न जाती है,
क्या बिस्तर से उठने की होगी वजह?
चाँद क्या ढलेगा, क्या होगी सुबह?

क्या सोकर काटूँगा जिंदगी के अँधेरे?
सपनों में खो जाएंगे क्या दुःख मेरे?
रात क्या खत्म होगी?
तकलीफें कम होंगी?
सुनहरी धूप क्या पहुँचेगी इस जगह?
क्या उगेगा सूरज? क्या होगी सुबह?

- विघ्नेश हेगडे

विस्तार

झुर्रियाँ बेतरतीब उग आती हैं
माँसल चमड़ियाँ लटक जाती हैं,
हमारी इच्छा के विरुद्ध।

जैसे सिवातें किस्म-किस्म के
बिस्तर पर उभर आती हैं,
करवट बदलने के अनुरूप।

उम्र रंगमंच है
डोर से बंधी कठपुतली नाचती है
नाट्य-रचना के सदृश्य।

डोर उलझने पर
पूरी वृत्तान्त अनसुलझी रह जाती है
या सधी रहती है डोर
और पतंग ऊंची उड़ती रहती है।

और नेपथ्य में बैठा इंसान
शीशे के सामने तैयार हो रहा है
अभिनय के लिए
बादल की असंख्य आकृतियाँ
जो समझ से परे हैं
वह उसे देख रहा है।

सहसा प्रतिबिम्ब में तुम दिखती हो
और मुझे विस्तार दिखता है,
क्षितिज के पार,
अनंत से दूर
जहाँ मेरे हाथ डोर से नहीं बंधे हैं
कोई नाटक नहीं चल रहा है
कोई अभिनय नहीं;
मैं, और तुम
वहाँ बस यही यथार्थ है
बाकी सब भ्रम।

मैं अब बात-बात पर नहीं चौंकता,
तुम मेरे साथ हो न!

—अमन

नन्ही अप्सरा

”देवी की पूजा होती है, अप्सरा की नहीं“,
यही कहकर एक बड़े नेता ने महिला सुरक्षा का वादा किया था।

नेताजी तो केवल पाँच वर्षों के लिए सत्ता में आए
किन्तु वह भीड़ फिर सौ वर्ष पीछे चली गई।

खबर छपी है
दो महीने की कली को फिर कोई हैवान बाग से तोड़ ले गया।

नेताजी ने तो सही कहा था,
नन्ही परियाँ कोई अप्सरा से कम है क्या?

--मनराज

ताले

ताले लगभग पहचान हैं,
अपनी हिफाजत के।

वो हवेली पर जड़ा
गर्द भरा, जंग खाया
एक पुराना ताला।

वो तिजोरी पर बना
सपाट सा, ढका हुआ
एक मुअम्मा ताला।

वो साइकल से बंधा
पगहा नुमा झूला हुआ
एक लचीला ताला।

वो दरवाजे पीछे टंगा
मंजा हुआ, ठोस गर्दन
एक दिखावटी ताला।

वो तुम्हारे लैब सजा
हर मिलन, गुलफाम रंग
एक फरेबी ताला।

मुझे इतने तालों में कहीं
कोई एक चाबी खो गई।

--सचिन

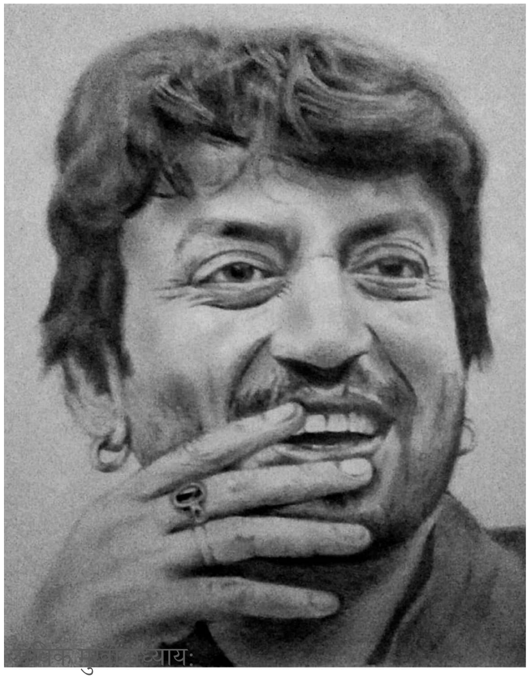

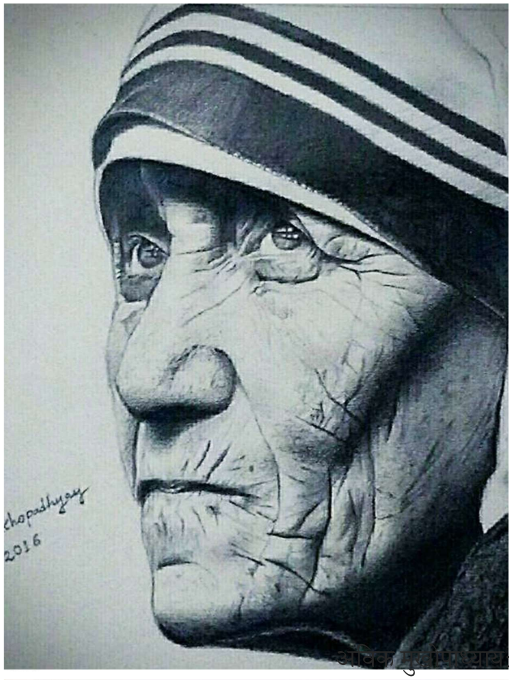
2016

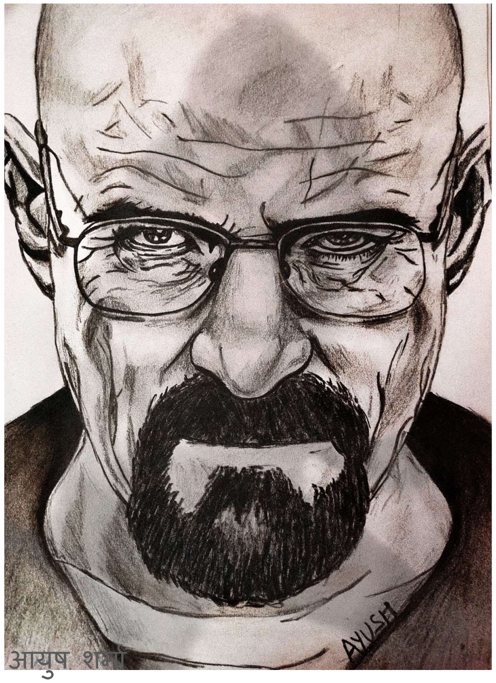
AYUSH
आयुष शर्मा

AYUSH
आयुष शर्मा

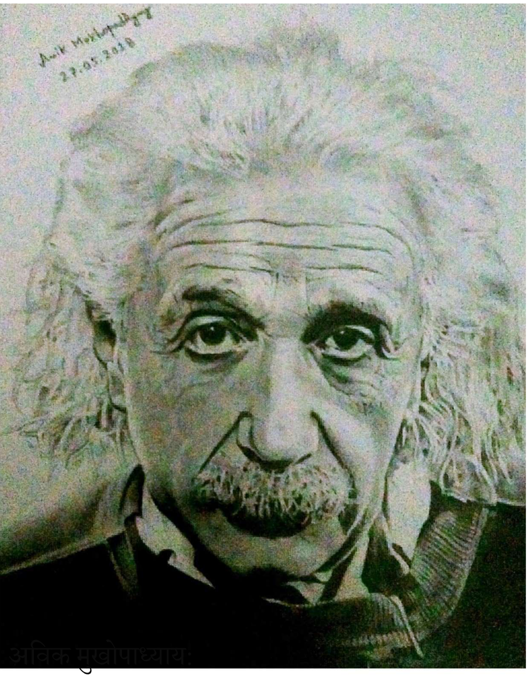
अविक मुखोपाध्याय

AYUSH
आयुष शर्मा

AYUSH
आयुष शर्मा

आयुष शर्मा

हिमानी शर्मा

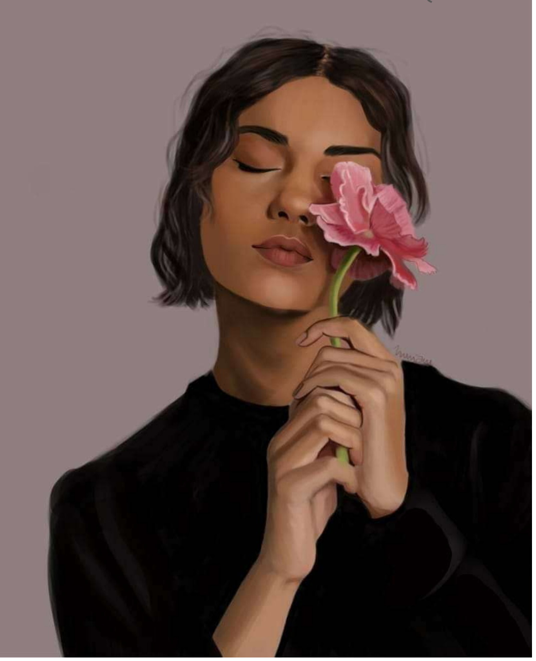

हिमानी शर्मा

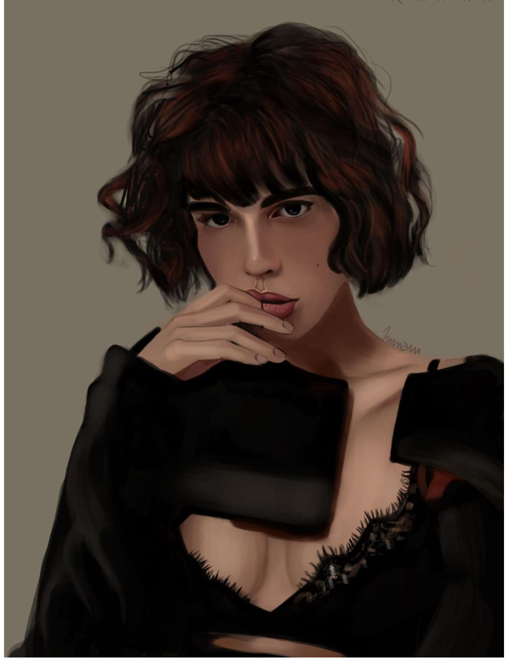

हिमानी शर्मा

हिमानी शर्मा

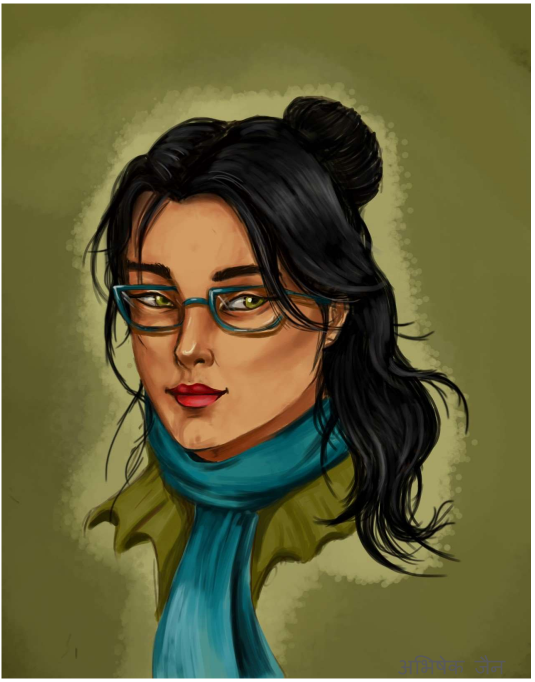

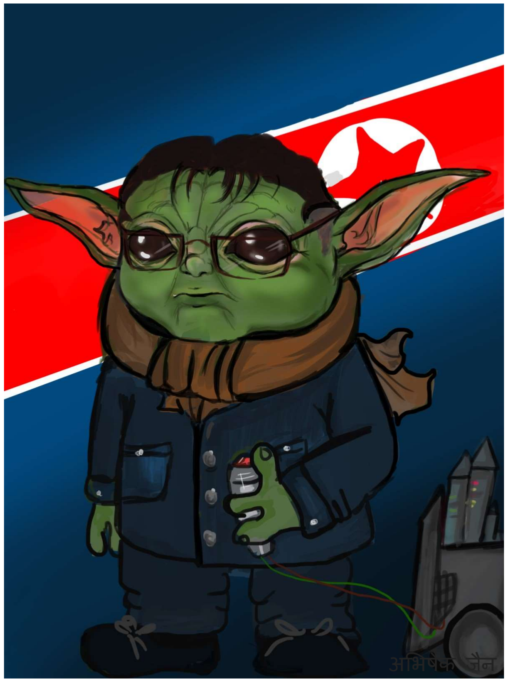

हिमानी शर्मा

हिमानी शर्मा

द टर्टल पॉण्ड

प्रकृति को समझना हो तो कभी एक पौधा लगाएँ, आप पाएंगे कि सुनने में यह जितना आसान लगता है, उतना आसान है नहीं। कुछ पौधे भारी बारिश में गल जाते हैं, तो कुछ पानी की कमी से सूख जाते हैं। कुछ को तेज़ धूप जला देती है, तो कुछ पर्याप्त धूप न मिलने के कारण कभी बढ़ ही नहीं पाते। पर वे गिने-चुने पौधे जो कि जीवन के साथ सामंजस्य बिठा पाते हैं, फलों से लदे बड़े वृक्ष बन जाते हैं।

बग़वानी और पशु पालन का हमारा कोई खानदानी इतिहास नहीं है। होता भी कैसे? भीड़-भाड़ भरे जिस मोहल्ले में हम पहले रहते थे, वहाँ इंसानों के लिए ही पर्याप्त जगह मुश्किल से मिल पाती थी, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों की तो दूर की बात। जब मैं अपने परिवार-सहित मुख्य शहर से थोड़ा दूर हमारे नए घर में रहने आया, तो नए शौक और नई संभावनाओं ने जन्म लिया। घर के आसपास आँगन और बगीचे के लिए पर्याप्त जगह थी। हमने बहुत सारे प्रयोग किए, जिनमें से कुछ सफ़ल रहे और कुछ नाकाम। पर क्या किसी कोशिश को सफ़ल या नाकाम कह देना इतना आसान है?

बात 2012 की है। मेरे तेरहवें जन्मदिन पर मुझे एक खास तोहफ़ा मिला। आजतक मिले सभी तोहफ़ों और खिलौनों से वह अलग था। बिना बिजली और बिना बैटरी के चलने-फिरने और तैरने वाला, एक कछुआ।
पहले पहल वह कुछ डरा सहमा सा रहता था पर हमारी दोस्ती होने में ज़्यादा वक्त नहीं लगा। कम से कम मैं उसे अपना दोस्त मान चुका था। हर रविवार उसके छोटे से काँच के पॉट को साफ करना जीवन का हिस्सा बन गया था।

कुछ समय बीतने पर मुझे ऐसा लगा, कि हमारी रोज़ाना कि देख-भाल के बाद भी बुद्धा (कछुए का नाम) उदास सा रहता था। मैंने अनुमान लगाया कि ज़रूर वह अकेला पड़ गया है। जीवन की कुछ सामान्य ज़रूरतें होती है, यह बात मुझे आने वाले समय में बहुत विस्तार से समझ में आई।
आखिर अकेले रहना किसे पसंद होता है? तो अगले सप्ताह हम उसके लिए एक दोस्त ले आए, उसकी ही बिरादरी का एक और कछुआ, यह बात हमें काफ़ी समय बाद मालूम हुई कि असल में वह एक मादा (female) कछुआ थी। अब हमारे पास दो कछुए थे, जो देखते ही देखते आकार मे बढ़ते जा रहे थे। उनका पॉट अब छोटा पड़ने लगा था। काँच का एक बड़ा aquarium लाया गया, साथ में हम कुछ रंग बिरंगी मछलियाँ भी ले आए। सोचा था कि मछलियों से कछुओं का मनोरंजन हो जाएगा, वे तालाब में तो साथ रहते ही हैं।

पर एक छोटे पॉट में, इन दो प्रजातियों के बीच के Biological Differences आने वाले समय में हमारे सामने स्पष्ट हो गए। हमारे कछुए जो कि अब आकार में एक वयस्क व्यक्ति की मुट्ठी के बराबर हो चुके थे, वे अब मछलियों के दाने और टमाटरों से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने छोटी और कमज़ोर मछलियों को निशाना बनाना शुरू कर दिया। मुझे याद आता है कि कैसे इस घटना ने मेरे बालक मन को झकझोर दिया था। जिन कछुओं के लिए मैंने क्या कुछ नहीं किया वह एसा घृणित कार्य कैसे कर सकते थे। पर घृणा और उत्साह का यह चक्र अभी शुरू भर हुआ था।

"Survival of the fittest" को सिद्धांत के रूप में तो मैं जानता था, पर प्रकृति पर प्रभुत्व की इस लड़ाई को मेरे घर वालों ने अपने घर में होना स्वीकार नहीं किया। कछुए आकार में बढ़ते जा रहे थे और साथ ही हमारी मछलियों की समस्याएँ। कछुओं को एक नए घर की ज़रूरत थी। हमने सोचा कि घर के पीछे वाले आँगन में एक छोटा तालाब सा बनाया जाए, यह इस समस्या का स्थायी समाधान होगा।

अगले रविवार से काम शुरू हुआ। मैं, मेरा छोटा भाई और पापा के दफ्तर के एक कर्मचारी हर रविवार इस काम को अपने पुराने Aquarium को साफ करने के काम का extention मानकर करने लगे। कभी-कभी घर के बाकी लोग भी मदद कर दिया करते थे। मेरे पिताजी ने काम के मामले में कभी अपने बच्चों और कर्मचारियों में फ़र्क नहीं किया। हमने भी उस समय इस काम को बाल मज़दूरी नहीं समझा।

हमने ईटों से कछुओं के लिए एक टंकी बनाई, उसके चारों तरफ मलबा भरके एक पक्का प्लैटफ़ार्म बनाया। उस प्लैटफ़ार्म के ऊपर दस फीट ऊंचा जाली की एक Aviary तैयार की। प्लान था की टंकी में कछुए रहेंगे, पास के प्लैटफ़ार्म पर खरगोश और ऊपर Aviary में पंछी। यह काम लगभग तीन साल तक चला, हर रविवार को सुबह उठते ही हम जुट जाते थे। एक बार हम नदी के किनारे से चिकने पत्थर ढूंढ के लाए और उनसे टर्टल टैंक की आस पास की जगह को सजाया, फिर एक पंप की मदद से झरना बनाया जो बहकर वापिस टैंक में गिरता था।

यह एक कभी न खत्म होने वाला प्रोजेक्ट था, हम हर रविवार कुछ नया करते, और मैं बेसब्री से रविवार का इंतज़ार करता। जब मेरी उम्र के बाकी बच्चे शायद TV देखकर या बाहर घूम-कर अपनी रविवार की छुट्टी मनाते थे, हम Turtle Pond के लिए दिन भर श्रमदान करते। इस कार्य को मेरे पिताजी ने श्रमदान कहना उचित समझा, क्योंकि यह सुनने में मज़दूरी से बेहतर लगता है।

जब हम पहली बार चार तोते लाए और उन्हे Aviary में छोड़ा तो सबके सब, कोने से जगह ढूंढ कर उड़ गए। अगले कुछ दिनों तक वे तोते हमारे घर के आसपास ही दिखाई दे जाते। जाली को फ़िक्स करके हम नए पंछी लाए। खरगोशों ने छोटे-छोटे बच्चों को जन्म दिया। आसपास रहने वाले सभी लोगों के लिए हमारा Turtle Pond आकर्षण का केंद्र बन गया था। एक समय ऐसा था जब लगने लगा था कि अब काम पूरा हुआ। सब कुछ सही चल रहा था।

पर दुनिया गोल है, प्रकृति Cycles में काम करती है। भारी बारिश का मौसम आया। जानवरों को पलने के लिए एक विशेष वातावरण की आवश्यकता होती है। खरगोश के छोटे बच्चे भारी बारिश और सर्दी को झेल न सके, छह में से चार बच्चों को हम नहीं बचा पाए। उस घटना ने मुझे बहुत प्रभावित किया, उस मनोस्थिति से निकलने में मुझे कई महीने लग गए। हमने बाकी बचे खरगोशों को एक सुरक्षित जगह पर छोड़ देना उचित समझा।

जबसे हम Aviary में चिड़िया लाए थे, तबसे घर के आसपास बड़े शिकारी पक्षी जैसे चील, उल्लू आदि का आना जाना बढ़ गया। उन्हें देखते ही हमारी चिड़िया डर से चिल्लाने लगतीं , उनकी आवाज़ का वह डर एक अलग ही तरह से disturbing था। जाली के पिंजरे को बार बार ठीक करने के बाद भी चूहे किसी न किसी तरह अंदर घुस जाते थे। यह हमें तब पता चला जब चिड़िया धीरे धीरे कम होने लगीं। रात के अंधेरे में चूहे छोटी लव-बर्ड्स का शिकार करने लगे। मैंने उतना असहाय अगले पाँच सालों में कभी महसूस नहीं किया। इन घटनाओं से घर के सभी लोग परेशान थे।

फरवरी 2015 की एक सुबह पीछे वाले आँगन में आठ फीट का एक काला कोबरा आया। पंछी इतनी ज़ोर से चिल्लाये की शायद पूरे मोहल्ले को पता लग गया होगा। इस घटना के बाद घर के बडों को, जिनको हम ने अब तक किसी तरह मना रखा था, उन्हें समझाना नामुमकिन हो गया। हमसे साफ़-साफ़ कह दिया गया कि अब यह प्रयोग और नहीं चलेंगे, जीवन बच्चों के खेलने का खिलौना नहीं होता। हम चाहते तो ये बात पहली मछ्ली के जाने पर भी समझ सकते थे। मेरे पन्द्रहवें जन्मदिन से कुछ दिनों पहले जाली को खोल दिया गया, और पक्षियों को आज़ाद कर दिया।

वह एक मिली-जुली सी अनुभूती थी। कहीं न कहीं जीवन के इतने नुकसान को देखने के बाद, शायद मैं भी यही चाहता था। अब जब कभी सोचता हूँ कि इतना समय, इतनी मेहनत और इतनी भावनाओं का invest करने के बाद मैंने क्या पाया? तो इसका कोई सीधा जवाब तो नहीं पाता। शायद इस कहानी के सिवा कुछ नहीं।

कुछ निवेश आपको रिटर्न नहीं देते, पर वे आपको अमीर बना देते हैं। प्रकृति को समझना सिर्फ़ उसकी ख़ूबसूरती को समझना भर नहीं, समझना होगा उसकी हिंसा को भी। शायद तभी हम ख़ूबसूरती और दया को अधिक महत्व दे पाएंगे।

अंत में सिर्फ वह कछुए बचे जिनसे यह कहानी शुरू हुई थी, मैं उन्हे पास ही के एक सरोवर में छोड़ आया। छोड़ना नहीं पड़ा, वह खुद ही मेरे हाथ से निकल के ऐसे भागे जैसे बस इसी का इंतज़ार था, शायद उन्होंने मुझे कभी अपना दोस्त समझा ही नहीं।

--व्योम चतुर्वेदी

मनघड़ंत

कहानी शुरू करने से पहले ही बता दें, कहानी के सभी पात्र काल्पनिक हैं, किसी भी व्यक्ति, वस्तु या स्थान से सादृश्य एक संयोग मात्र होगा।

मेरे घर के पीछे एक पार्क है और अक्सर जैसा कि होता है, पार्क से ही लगा हुआ एक मंदिर है। यहाँ हर शाम महफिल लगती है, मोदी और अमित शाह की राजनीति, चीन की उद्दंडता, केजरीवाल का पाखंड, गांधी परिवार की धूर्तता, शर्मा जी की गाय के बछड़े का रंग-रूप, राठोर साहब के विलायत में बसे हुए बेटे के लौटने की संभावना, और जैन साहब के कुत्ते का आतंक और पार्क में लघुशंका करने की उसकी आदत, सब पर चिंतन मनन यहीं होता है। आज फिर यही महफिल लगी थी, बस भीड़ थोड़ी सी ज़्यादा थी। पड़ोस वाले राठौर सा से लेकर अगले मुहल्ले के शर्मा जी, सभी आए थे, तो तय है कि आज ये तो चर्चा का विषय नहीं थे। अधेड़ उम्र के अंकल लोगों के साथ, टहलने वाले बुजुर्ग, बतियाने इकट्ठा होने वाली महिलाएं और ऊधम मचाने आए बच्चे, आज सब इस महफिल का हिस्सा बन गए थे। वो बात क्या थी कि आज एक शर्त लगी थी। दरअसल, शर्मा जी और राठोर सा के बीच ही लगी थी कि किसके पुरखों ने ज़्यादा महान कार्य किए थे।

इंसान का घमंड भी ना गज़ब की चीज़ है। अच्छा चलिये, एक बार तो हम घमंड को बुरी नज़रों से नहीं देखेंगे, बशर्ते आप घमंड अपने किए पर तो कीजिये। फिर आप कहेंगे कि अपने बाप-दादाओं और बिरादरी वालों की उपलब्धियों पर हम घमंड नहीं करेंगे तो उनकी पूजा और प्रोत्साहन, दोनों खत्म हो जाएंगे। अच्छा जी छोड़िए, कौन बहस करे। हम तो बस यही चाहते थे कि घमंड यथार्थवादी विषयों पर तो करें। ये बात भी आपको खटक गई। अरे रे, आपको लगता है कि हम डींगे हांक रहे हैं, ठहरिए, अभी साबित किए देते हैं कि जिसे आप बतंगड़ बता कर समझदार बनने की कोशिश कर रहे हैं, उससे इतने लोग वाक़िफ़ हैं कि क्या बताएं, आप खुद ही देख लीजिए और फिर बताइएगा, सच हो सकता है कि नहीं। अब हम तो बच्चे ठहरे, हम क्यों इनसे भिड़ते। वैसे भी आजतक जैन साहब के कुत्ते की शिकायतें आती हैं, बेटी की उद्दंडता की भी आने लगीं तो माँ बहुत डांटेगी। सुनने में ही ध्यान लगाना बेहतर जानकार हम भी महफिल से जुड़ गए।

राठोर सा ने शुरू किया। बात रजवाड़ों के जमाने की थी। वही पुरानी कथा, बेरहम राजा और लाचार प्रजा। पर किस्मत का खेल देखिये, गाँव के जमींदार को एक रात स्वप्न में एक देवी माँ की गढ़ी हुई प्रतिमा का पता चला। अगले दिन गाँव वालों को लेकर वो उस जगह गए और खुदाई कारवाई तो एक कुलदेवी की मूर्ति मिली। वहाँ उनका मंदिर बनवाया गया। मानता थी कि देवी माँ चमत्कार करती हैं, जिस व्यक्ति पर उनकी कृपा हो, वो मरने के बावजूद मरता नहीं है कुछ समय तक। बात दूर-दूर तक फैली, राजा तक भी पहुंची। अंधेर नगरी के चौपट राजा का खेल देखिये, उसने घोषणा करवा दी कि यदि कोई व्यक्ति इस बात को सत्य साबित कर देता है, तो सभी गांवों का लगान माफ कर दिया जाएगा। सब बगलें झांक रहे थे। तैश में आकार वो जमींदार बोला के मेरा बेटा करेगा ये। तय समय पर सब एकत्रित हुए। माँ का आशीर्वाद लेकर वो 18 वर्ष का नौजवान मंदिर से बाहर निकला ही था की राजा के आदेश पर उसका सर धड़ से अलग कर दिया गया। इसके बाद भी उसका शरीर जंगल में बने रास्ते पर 100 कोस तक आगे चला। फिर ढेर हो गया। राजा अपने वचन से बंधा था, सभी गांव वालों का बकाया लगान माफ़ कर देना पड़ा। राठोर सा गर्व से हुंकारे, हमारे पुरखों ने राजा के अत्याचार से सबको बचाया, इससे महान कार्य तो हो ही नहीं सकता। आमिर खान की फिल्म लगान इसी कथा पर आधारित है ये भी उन्होंने बेहद ज़ोर देकर बताया।

मर गए भगवान! मारना था तो बेचारे को युद्ध में मार देते, शहीद का दर्जा तो मिलता उसे। खाम-खान शर्त के पीछे मरवा दिया और अब चटखारे लेकर उसकी कहानियाँ सुना रहे हो। ये बड़े लोग इतने घंचक्कर क्यों होते हैं। खैर जो भी हो, हम तो इसे सच नहीं मानेंगे। शर्मा जी भी कहाँ चुप बैठने वाले थे। एकदम बोल पड़े, अब हमारी कहानी सुनो। अरे बाप रे, एक और ऐसी कहानी सुनने की क्षमता तो हमारे अंदर रही नहीं। घर लौटना ही ठीक रहेगा, वहाँ कम से कम ऐसी बिना सिर पैर की बातें

तो नहीं होंगी। अब तो जेरी भी रेस्टलेस हो रही है। कहीं उसने भौंकना और दौड़-भाग करना शुरू कर दिया और ये महफिल बिगड़ गई तो लेने के देने ना पड़ जाएँ। इतनी मुश्किल से सबका ध्यान शर्त पर लगा है, कहीं फिर से जैन साहब के कुत्ते पर ना आ जाए। तो हम चले घर और वहाँ ये पूरा किस्सा माँ, पापा और भाई को सुनाया, यह सोच कर कि वे खूब हँसेंगे। पर जानते हैं हुआ क्या, भाई बोलता है कि इसमें क्या है, तूने बुलेट बनाने की कहानी नहीं सुनी??? हैं????? ये क्या हुआ। तो अगली कहानी शुरू होती है। कुछ समय पहले, शहर के शुरू होने से थोड़ा सा पहले हाइवे पर एक दुर्घटना घटी। एक ट्रक वाले ने एक बुलेट मोटरसाइकल को टक्कर मार दी। उस पर सवार व्यक्ति की वहीं मृत्यु हो गई। पुलिस केस बना और बाइक को पुलिस स्टेशन में लाकर खड़ा कर दिया गया। पर आश्चर्य, अगली सुबह बाइक पुलिस स्टेशन से गायब थी। वो उस एक्सीडेंट की जगह पर वापस पहुँच गई थी किसी तरह। यह सिलसिला कुछ दिनों तक चलता रहा। अंततः उस स्थान पर एक मंदिर बनाकर बुलेट की वहाँ स्थापना की गई। आज भी हाइवे से गुजरने वाले लोग सुरक्षित सफर के लिए वहाँ माथा टेकना नहीं भूलते।

लो हो गया सत्यानाश! चिराग तले घोर अंधेरा। इतने में ही पापा बोले कि गौड़ अंकल वाली कहानी भूल गए क्या! बस इसी की कमी थी ना! पापा के ये दोस्त बहुत वर्ष पहले अपने गाँव में जब रहा करते थे, तब की बात है। तब ये लोग सब तांत्रिक वगेरह के चक्कर में भी पड़ जाया करते थे। पापा बताते हैं कि उनके गाँव में एक आदमी आता था जिसके पास एक मुर्गा था जो खजाने तक पहुँचने का रास्ता दिखाता था। उसके गले में एक ताबीज़ बांध दिया जाता था और फिर वो बेतहाशा दौड़ता था। जहां वह रुककर अपनी चोंच ज़मीन पर बार बार मारने लगता था, वहाँ खजाना निकलता था। मज़े-मज़े में पापा ने भी आज़माया था पर कुछ हाथ नहीं लगा, ये बात अलग है। हाँ तो हम अंकल की बात कर रहे थे। उनके घर अक्सर एक साधु बाबा आकर रहा करते थे। एक दिन उन्होंने बताया कि पास वाले गाँव के ऊपर जो किला है, उसमें खजाना छुपा है। अगले दिन उन्होंने सुबह-सुबह एक कुँवारी बालिका से कहकर एक दिया जलवाया और पूजा करने के बाद लौ के ऊपर अपने बाएँ हाथ का अंगूठा रख दिया। अंगूठा जलने पर वहाँ एक निशान बन गया। उन्होंने बताया कि यह खजाने तक पहुँचने का नक्शा है। अब वो तांत्रिक, हमारे अंकल जी, गाँव के जमींदार साहब और उस किले वाले गाँव के दारोगा साहब, चारों पुलिस की गाड़ी में सवार होकर देर रात किले में पहुंचे। तांत्रिक उन्हें उस खंडहर किले में अंदर ले जाता गया और बहुत देर चलने के बाद वे एक दरवाज़ेनुमा स्थान पर पहुंचे। तांत्रिक ने बोला कि खजाना यहीं दहलीज़ के नीचे छुपा है। फावड़ा और कुदाल लेकर तांत्रिक ने ही खोदना शुरू किया, वो क्या है ना कि बाकी सब कितने भी शेर बन रहे हों, उस समय सब भीगी बिल्ली बन गए थे। अचानक से, उस स्थान पर, जहां तांत्रिक बाबा खुदाई कर रहे थे, बहुत तेज़ रोशनी चमकी और बाबाजी उछलकर दूर जा गिरे। सब घबरा गए। बाबाजी हिल ढुल भी नहीं रहे थे। बाकी तीनों ने न आव देखा न ताव, वहाँ से भागे। नीचे गाड़ी पर पहुँचने के बाद दारोगा साहब बोले कि इस घटना का कभी किसी के सामने ज़िक्र मत करना, बाबाजी की लाश को मैं ठिकाने लगवा दूंगा। किस्सा खत्म हुए कुछ आठ-एक दिन बीते होंगे कि वो तांत्रिक बाबा फिर अंकल के गाँव में नज़र आए। अंकल के होश उड़ गए। उनके पास गए और जैसे ही तांत्रिक ने उन्हें देखा, वह ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा। बोलता है, “क्या गौड़ साहब, आप सब डर के भाग गए। मुझे अकेले ही खजाना निकालना पड़ा।“ तब अंकल का ध्यान गया कि उसकी पीठ पर तो बड़ी-बड़ी पीतल की थालियाँ बंधी थीं। मुझे पता है कि आप क्या सोच रहे हैं, पीतल? पर क्या, 20-22 साल की उम्र में पीतल की थाली खुदाई में मिलना कोई छोटी बात नहीं होती। वैसे भी मैंने सुना है कि अंकल के गाँव वाले कहते हैं कि तांत्रिक बाबा को सोने की मुहरें भी मिली थीं। वो तो फकीर था, सब कुछ अंकल को दे गया और अंकल ने सब कुछ छुपा दिया। आज उस खजाने की बदौलत ही वे इतने अमीर हैं। अरे नहीं, ये मत सोचिए कि मैं इसे अचानक से सच मानने लगी। हालांकि अंकल तो कहते हैं कि वो थालियाँ अब भी गाँव के घर में होंगी। मानना पड़ेगा पर, कहानी तो अच्छी थी। जब सुनी, तब तो अचम्भित भी बहुत हुए थे और हंसी भी बहुत आई थी।

हम मुद्दे से भटक गए पर। कहाँ यह सुनना चाहते थे कि ऐसा कुछ नहीं होता है, कहाँ यह सुनना पड़ गया कि बहुत कुछ होता है। वैसे हमें दिख रहा था कि पापा मंद-मंद मुस्कुरा तो रहे थे। लगता है कि लोगों का मज़ाक हमारे सामने न उड़ाने की कोशिश कर रहे थे, वो क्या है ना कि माँ को लगता है कि उन्होंने हमें सिर पर चढ़ा रखा है इसलिए हम बिगड़ते जा रहे हैं, तो माँ के सामने हम दोनों ही खुदको काबू में रखे हुए थे। इतने में माँ की माँ का फोन आ गया और एक घंटे जो माँ फोन पर लगी रहीं, हम सब खूब हँसे!

–निमिषा जैन

पन्ना नंबर ६९४

लाश!

लावारिस..., सड़ती..., बेसहारा पड़ी हुई..., लाश!

" समय, 18:45:04 "

रोटुंडा के बीचों–बीच पड़ी हुई यह लाश और उसके नीचे लिखा हुआ यह समय बहुत ही पेचीदा सवाल खड़े कर रहा था। ये लाश है किसकी है? ये यहाँ पहुंची कैसे? और यह समय! इसका क्या अर्थ है?

उन दिनों हम चुनिंदा शोधकर्ताओं को छोड़कर कॉलेज के कैम्पस में कोई नहीं हुआ करता था। दुनिया भर में महामारी के चलते कॉलेज भी बंद कर दिया जा चुका था। हाल ही में हुए "लोकस्ट अटैक" की वजह से कुछ दिनों तक हमें भी कैम्पस में निकलने की छूट नहीं थी। तब कैम्पस में बिलकुल सन्नाटा हुआ करता था। कुछ दिन बाद जब मैं वापस अपनी लैब की ओर जा रहा था, मैंने रोटुंडा में भीड़ पाई। ठहर कर देखा तो एक मृतक का शव पड़ा था जिसके नीचे लिखा हुआ था वह "समय"। शुरुआती जाँच से पता चला कि मृतक बॉयोलॉजी विषय का शोधकर्ता था।
उसका नाम था समय जैन। और उसका खूनी फरार था। मुझे थोड़ा अचरज हुआ। यह सोचकर कि बॉयोलॉजी डिपार्टमेंट, जो कि FD3 में है, वहाँ से रोटुंडा तक एक लाश, बिना किसी को भनक लगे, कैसे लाई जा सकती है। और एक शोधकर्ता से किसी की कैसी दुश्मनी? पर सबसे ज्यादा हैरान था मैं उसका नाम सुनकर: "समय"। मुझे थोड़ा अजीब उस वक्त भी लगा था जब मैंने लाश के नीचे लिखा सन्देश पढ़ा, "समय, 18:45:04 "। स्वाभाविक तौर पर लोग समय लिखते वक्त योजक–चिह्न(–) या फिर अपूर्णविराम(:) का इस्तेमाल करते हैं, परन्तु इस जगह अल्पविराम(,) का इस्तेमाल किया गया था। क्या यह संभव है कि इस समय का अर्थ कोई वक्त नहीं परन्तु उसका नाम हो? फिर वह लिखे हुए अंक क्या दर्शाते हैं? और क्या क्लॉक टॉवर की घड़ी का भी लगभग यही समय बताते हुए अटक जाना सिर्फ एक इत्तेफाक है? अपने प्रथम वर्ष में मैंने कैम्पस की कई प्रचलित कहानियाँ सुनी थी। जैसे गाँधी 137, मीरा का मर्डर, और शिव–गंगा। उनमें से ही एक FD3 और रोटुंडा को जोड़ने वाली सुरंग के बारे में। रोटुंडा के दो दरवाजे, जिनमें से एक सीधा सुरंग के रास्ते FD3 में जाकर खुलता है। रोटुंडा का दरवाजा तो खैर सामने ही दिख जाता है, परन्तु शुरुआती दिनों में कैम्पस का कोना–कोना छानते हुए मैंने FD3 का वह दरवाजा भी खोज निकाला था जो उस सुरंग का दूसरा छोर हो सकता है। FD3 में घुसते ही, दाईं तरफ, सीढ़ियों के बगल में ही एक छोटा सा दरवाजा दिखाई दिया, जिसके अंदर जाते ही सुरंग का आभास होने लगता है। उस दिन दरवाजे में ताला लगा होने के कारण मैंने अंदर घुसना ठीक नहीं समझा, परन्तु आज, वह सुरंग मेरे कुछ सवालों का जवाब रखती हुई प्रतीत हो रही थी।

रात 3 बजे, मैं FD3 के रास्ते उस सुरंग में पहुंचा। ताला तोड़कर जब मैं अंदर घुसा तो वह जगह कबाड़ से भरी हुई थी और सामने एक टूटा–सा दरवाजा था। अंधेरा था। काफी दूर चलने के बाद मुझे एक कमरा नजर आया। वहाँ समय का एक खत पड़ा हुआ था "मैं समय, इस इंसान के ऊपर कुछ सालों से शोध कर रहा हूँ। यह आदमी साइकोपैथ है। यह लेखक बनना चाहता है एवं मर्डर मिस्ट्री की कहानियाँ लिखना चाहता है। पर मन–गढ़त कहानियाँ न लिखकर ये पहले लोगों का कत्ल करता है और फिर उसको ही कहानी के रूप में हर एक पृष्ठ पर लिखता जाता है, जिसकी शुरुआत मरने वाले के नाम व संख्या से होती है। वह किसी तरीके से क्लॉक टॉवर से यह संख्या दर्शाता है। टेबल में जो 'वाणी' नाम की डायरी है उसमें उसके सभी कत्ल की कहानियाँ है। इसे संभाल कर रखना"। मुझे क्लॉक टॉवर की घड़ी याद आई तो ध्यान आया कि वह तो पौने–सात पर अटकी हुई है। छोटा काँटा छह और सात के बीच में, पर बड़ा काँटा नौ पर, और सेकंड का काँटा चार पर। 6–9–4। मैंने वह डायरी उठाई तो उसमें 693 कत्ल की कहानियाँ हर एक पन्नों पर लिखी हुई थी। 694वाँ पन्ना फटा हुआ था। मेरे हाथ–पैर अब डर से कांप रहे थे। हो ना हो इस फटे हुए पन्ने में समय के कत्ल की कहानी लिखी है। पर वह पन्ना कहाँ हो सकता है? तब ही मुझे पीछे से किसी की परछाई दिखाई दी। मैंने अगले पृष्ठ पर देखा तो लिखा हुआ था, मेरा नाम "अनिमेष, 18:45:05 "।

694

–अनिमेष जैन

चांदनी

चन्द्रमा! क्या व्यथा तेरी, तू पहला कभी नहीं,
प्रथम स्थान पर सूरज की छवि सर्वदा से रही।

भानुतुल्य किरणें न तेरी, और न ही सूर्यसम तेज,
अनेक काले धब्बों से है कलंकित तेरा कलेजा।द्य

कमल जो खिलते, वे सारे हैं सूरज के अनुगामी,
प्रात:समय की हलचल हो जाती रातों में धीमी।

उन रातों में अलक्षित सा तू लाँघता नभ का रास्ता,
अमावस्या की काली रात में तू तो गगन में भी न बसता।

पर बसता तू कवियों के हृदयों की गहराई में,
सपनों की नगरी में, खरगोशों के शहरों में।

राह देखते प्रेमी की आतुरता के पहरों में,
शांत सागर की लहरों में, बच्चों के चेहरों में।

तारों के राजा की पदवी खोखली है तो क्या?
कल्पनाओं की दुनिया में तू ने ही राज किया।

असत्य है, यदि कोई कह दे की द्वितीय है तू।
चन्दा! तू तो बेमिसाल है, अद्वितीय है तू।

विघ्नेश हेगडे

सागर को 'हिमालय' में बदलते सुना है,
शायद हर वजूद का अंत यही होता है।
लगातार 'बहते' रहने के बाद 'स्थिरता' की हद,
यह त्रासदी कैसे सह गया हिमालय
वास्तव में हिमालय तुम पूजनीय हो,
समाये हो हृदय में अनगिनत कुंठाएँ ,
क्रोध, आक्रोश, विष और ज्वाला,
जो उठता है झंझावात भीतर ही भीतर,
पर हिमाच्छादित हुए तुम, बन गए पर्यटक स्थल,
लोग तुम्हारी 'बर्फ' को उछलते हैं, खेलते हैं,
गढ़ते हैं लोकोक्तियाँ, बनाते हैं रास्ते,
और तुम अचल, शांत, सौम्य खड़े,
मुस्कुराते रहते हो हरदम,
ऐसा क्या सहा है तुमने
कि, स्थिरता की हद तक पाषाण बन गए तुम
सूरज की तपन, तेज हवाएँ या तूफान,
कोई तुम्हें विचलित नहीं कर पाता।
तुम सबको माफ करते हुए,
अविचल, गंभीर खड़े रहते हो,
पालते हो अपने आंचल में संस्कृतियाँ,
परम्पराएँ और धर्म,
बस मूक दर्शक भाव से,
दोह ली गई तुम्हारी जड़ी-बूटी,
जल, रंग, रत्न और महक
और तुमने आवाज भी ना उठाई,
अक्सर देखती हूँ,
जब भी कभी तुम बदलते हो परिपाटी,

जब चाहते हो तुम भी फिर वही नैसर्गिक बहाव,
अपनी दुनिया, अपना जीवन, अपनी आभा,
तुम्हारे इसी रूप के आदि लोग,
एक झटके में बिलखने बिखरने लगते।
तबाही के हाहाकार से भर जाता तुम्हारा जहन
तुम्हारी ममता और तुम्हारे संस्कार फिर देते दुहाई,
बस तुम फिर से समेट लेते हो,
कुंठा, अपमान और भय का जहर,
जो सालता जाता तुम्हें पल पल
हिमालय, बर्फ की शीतल चादर के नीचे,
जो ये लावा कभी न रुक पाया,
जो भर गया तुम्हारा अंतर्मन कभी,
तब, तुम्हारी अचलता, सौम्यता, ममता,
सब विकृत हो जाएगी लोगों की नजर में,
जमाना नहीं देखेगा कि तुमने
इतनी सदियों अचल रह कर सहा है हर प्रहार,
तुम रहे हो रक्षक या पालक,
तुम अचानक बुरे बन जाओगे,
शायद एक डायनामाइट के धमाके से हटा दिया जाए तुम्हारा अस्तित्व,
हिमालय अब भी कहती हूँ, तोड़ दो ये चुप्पी उतार फेंको ये बर्फ का आवरण,
कहीं तुम्हारे हश्र बहुत-बहुत भयंकर ना हो।

मेरे हिमालय

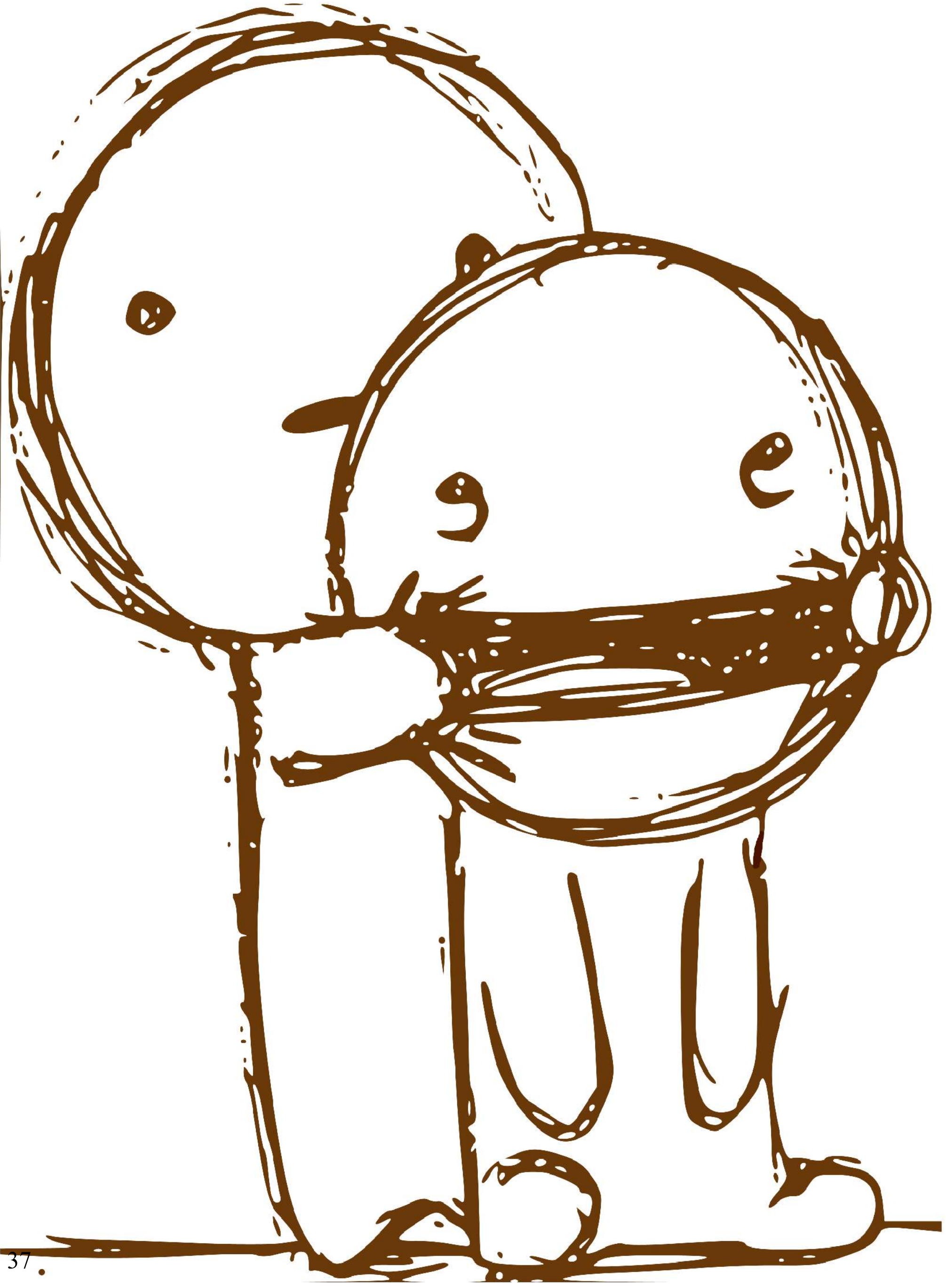

एक बुरी आदत

अब सुबह स्कूल जाने की वह उत्सुकता कहाँ वापस आ पाएगी,
देखूँगा तुम्हारी खाली सीट की तरफ, तो यह आँखें भर आएँगी,
मैं एक बार को भुला भी दूँगा तुम्हें पर,
तुम्हारे साथ टिफिन खाने की यह आदत कैसे जाएगी।

स्कूल बस की यात्राएँ, उबासियों और झपकियों में ही खर्च हो जाएंगी,
फिर से नाक में दम कर देने वाली जोड़ी कहाँ ही कोई आयेगी,
मैं एक बार तो भुला भी दूँगा तुम्हें पर,
तुम्हारे साथ खिड़की वाली सीट के लिए लड़ने की आदत कैसे जाएगी।

बुलाया जायेगा रोल नं जब भी तुम्हारा, धड़कन बढ़ जायेगी,
दोस्त तो शायद कई मिलेंगे, वह यारी फिर ना मिल पायेगी,
मैं एक बार को भुला भी दूँगा तुम्हें पर,
तुम्हारे साथ अपना दिन साझा करने की यह आदत कैसे जाएगी।

याद में तुम्हारी, मुस्कुराहट हमारी यूं ही चली आएगी,
और नजरें दोबारा, तुम्हारी दी हुई कलम पर दौड़ जाएँगी,
मैं एक बार को भुला भी दूँगा तुम्हें पर,
तुम्हारे होम-वर्क कॉपी करने की यह आदत कैसे जाएगी।

किसने सोचा था कि कभी जिंदगी ऐसे मोड़ पर लाएगी,
हाथ थामने वालों की लकीरें उन्हें हमेशा के लिए दूरं करवायेंगी
मैं एक बार को भुला भी दूँगा तुम्हें पर,
हर गम में तुम्हारे कंधे पर सर रखने की आदत कैसे जाएगी।

हमारे किस्सों की किताब इस कविता में तो नहीं समां पायेगी,
साथ में तस्वीर तक न होना, हमारी मित्रता पर सवाल उथाऐगी,
मैं तो एक बार को भुला भी दूँगा तुम्हें पर,
तुम्हारी न होने पर आँखों के बेचौन रहने की आदत कैसे जाएगी।

अब जा ही चुके हो तुम, ये बात न जाने दिमाग में कब समा पायेगी,
तुम्हारी खुशहाली की दुआ मेरी तरफ से हर रोज की जाएगी,
मैं तो तुम्हें भुलाने की कोशिश में मान चुका हूँ हार,
पर देखना है कि जिंदगी तुमसे मिलने की उम्मीद कैसे तोड़ पायेगी।

– चिन्मय अग्रवाल

बिन मौसम हुई बारिश

मौसम ने रुख है बदला
न जाने क्यूँ कैसे यह पल्टा
बे वक़्त की बारिश
अनकही सी कुछ गुजारिश

शायद यह चुप्पी दो पल की
दिल से किसी दिल की
कहना भी चाहे
पर फिर संभल जाए

आखिर इस सुनहरे मौसम की अंगड़ाई
क्यों लड़े खुदी से खुद की लड़ाई
बस भीगने का सा है मन
पर जाने क्यूँ
चाह के भी फिसले ना ये मन

यूँही बदलते हैं ये रास्ते
वक़्त ने बदला अपना मोड़ है
आखिर दिल की बातें ज़रिया
ढूंढ ही लेती हैं लफ़्ज़ बन के

यश सरावगी

धन्यवाद कोरोना तुम्हारा

फ़िज़ूल की भागदौड़ पर, एक लम्बा लगाम लगा दिया,
धन्यवाद कोरोना तुम्हारा, इंसान को इंसान बना दिया।

न मॉल, न सिनेमा और न बाहर का खाना,
न छोटी-छोटी बातों पे घर से बाहर जाना।

घर को ही जन्नत-सा उद्यान बना दिया
धन्यवाद कोरोना तुम्हारा, इंसान को इंसान बना दिया।

देख रहें हैं नीला आसमान, कितने वर्षों बाद,
अनगिनत टिमटिमाते तारे, जाने कितने अरसों बाद।

प्रकृति के दूत ने, हवा में घुलते ज़हर पर विराम लगा दिया,
धन्यवाद कोरोना तुम्हारा, इंसान को इंसान बना दिया।

कई सालों बाद घर में सब साथ हैं, और वक़्त है,
पहली बार पता चला कि कानून व्यवस्था कितनी सख्त है।

डॉक्टर, पुलिस और शिक्षक को, सही में भगवान बना दिया,
धन्यवाद कोरोना तुम्हारा, इंसान को इंसान बना दिया।

जब घर से सकुशल काम होता है, तो ऑफिस क्यों जाते थे?
व्यर्थ का ईंधन, बिजली और संसाधन खपाते थे।

कई महीनों से खड़ी है जो पार्किंग में,
उसे फ़िज़ूल का वाहन बना दिया,
धन्यवाद कोरोना तुम्हारा, इंसान को इंसान बना दिया।

हे परम शक्ति कोरोना! इतना काफ़ी है
इंसान को इंसान बनाने के लिए,
सहृदय विनती है तुमसे, अब वापस जाने के लिए।

वादा करते हैं कि आगे प्रकृति पर आँच नहीं आने देंगे,
हवा की शुद्धता और पानी की पारदर्शिता को नहीं जाने देंगे।

तुम्हारे इस सबक ने पूरी दुनिया में कोहराम मचा दिया,
धन्यवाद कोरोना तुम्हारा, इंसान को इंसान बना दिया।

-कपिल कुकरेजा

एक और वैदेही

- डॉ. इति शर्मा

लगातार चार दिन से तेज़ बारिश हो रही थी, पानी जैसे रुकने का नाम ही नहीं लेता था। जानकी स्कूल आई, गीले कपड़ों को झाड़कर अगरबत्ती जलाने चली गई, जानकी की भगवान में अपार श्रद्धा है, न जाने मन ही मन क्या मंत्र बुदबुदाती है और बहुत सी जीवन शक्ति समेट कर फुर्ती से डेस्क जमाने लगती है। पिछले दस साल से जानकी को सभी ने इसी रूप में देखा है, उसके चेहरे की मुस्कान और इंग्लिश मीडियम स्कूल में मैडम जी और मास्टर जी जैसे संबोधन अब जानकी का परिचय बन गया है। उसे छुट्टी लेते शायद कभी किसी ने नहीं देखा, बच्चे भी लंबी, दुबली, सुर्ख़ गुलाबी चेहरे वाली गतयौवना के दीवाने हुए फ़िरते हैं। पहले ही दिन से मुझे भी जानकी में कुछ ऐसा नज़र आया जो उसे सामान्य से अलग करता था, आकर्षक कद, काठी, काले लंबे बाल, कलाकार की छाप लिए दुबली पतली उंगलियां, पूरी चुस्ती से पहनी गई साड़ी, उन्नत ललाट पर छोटी सी बिंदी और आँखों में चमक, पहली नज़र में कोई भी उसे विद्यालय की अध्यापिका ही समझ लेता। हर टीचर से लेकर प्रिंसिपल तक सब उसकी फुर्ती और सादगी के कायल हैं।

आज अचानक जानकी ने छुट्टी की अर्जी पेश की, प्रिंसिपल साहिबा ने उसे एक नज़र ऊपर से नीचे तक देखा, ”जानकी, आज इतने साल बाद तुम्हें छुट्टी की क्या ज़रूरत आ गई ?“

”बस मैडम जी दो दिन में लौट आउंगी और फिर शायद कहीं न जा पाऊँ“ जानकी ने बुदबुदाकर कहा, शायद प्रिंसिपल साहिबा अंतिम शब्द सुन नहीं पाई। चिरपरिचित मुस्कानों की मलिका ने अपने व्यक्तित्व के चारों ओर ऐसी रेखा खींच ली थी, कि जिसे पार करने की हिम्मत कोई नहीं कर पाया, सो उसकी अर्जी मंजूर हो गई।

मैं अपनी क्लास ले कर निकली ही थी कि जानकी मिल गई। आज उसकी आँखों में चमक नहीं थी, शायद इसलिए उसकी मुस्कान धुंधली हो गई।

”क्या बात है जानकी ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ?“

”नहीं मैडम जी वो बात नहीं है, पर आज आपसे बात करने का बहुत मन हो रहा है।“

रीसेस बेल हो चुकी थी, आज बारिश के कारण स्कूल की जल्दी छुट्टी हो गई।

जानकी ने मेरे लिए चाय बनाई और पास ही स्टूल डाल कर बैठ गई।

”क्या बात है जानकी आज चाय का स्वाद भी अलग है, तुम्हारा ध्यान भी कहीं और है, तुम्हें पहले तो ऐसा कभी नहीं देखा।“

घड़ी में शाम के चार बज आए, मैं कैम्पस हॉस्टल में ही रहती थी सो समय की मुझे कोई खास फ़िक्र नहीं थी, बाहर देखा बादल फिर आए थे और पलट कर देखा तो जानकी की आँखों में उदासी के स्याह डोरे तैर रहे थे।

”जानकी!“ बस मेरा इतना बोलना था कि उसकी ‘पीर’ पके फोड़े सी अपने सारे उबाल

के साथ बहार निकल आई, न जाने कब से रग-रग में बसी पीड़ा बाहर निकलने को उद्व ेलित हो गई थी। जानकी का यह रूप मेरे लिए नया था, पर मनोविज्ञान की छात्रा होने के नाते उस मन को समझने की कोशिश कर रही थी।

"मैडम जी मैं घर जा रही हूँ।"

"घर! क्या कोई ज़रूरी काम है?"

"मेरे पति ने बुलाया है, कल ही गाँव से आए रिश्तेदार ने बताया कि उनकी तबियत बहुत खराब है।"

"तुम्हारे पति," मैंने गौर से उसकी सूनी कलाई और मांग की तरफ देखा।

"हाँ मैडम जी, जयपुर के पास छोटे से गाँव में मेरे पति रहते हैं, पर मैंने उन्हें छोड़ दिया है।"

"तुमने!"

"मैडम जी शादी के बाद दस साल के वो सुहाने दिन आज भी याद आते , सोलह साल की थी जब शादी हुई, छोटा सा परिवार, दो ननद और एक देवर। ननद मुझे माँ जैसा मान ही देती, ख़ुशी ख़ुशी मैंने सब ज़िम्मेदारी संभाल ली। मेरे मायके में बस पिताजी थे जो अक्सर बीमार रहते थे, पर गाँव में उनकी बहुत इज़्ज़त थी। समय मज़े से बीत रहा था, ननदें शादी होकर अपने घर चली गई और देवर भी बाहर नौकरी करने लगे। बाबूजी भी बुजुर्ग हो चले थे, मैं अपनी दुनिया में खुश थी।

अचानक खबर आई कि मेरे पिताजी बहुत बीमार हैं। मैंने तुरंत गाँव जाने की सोची और अपने ससुर के पांव छूकर रवाना हो गई।

लगातार दो महीने उनकी तीमारदारी में निकल गए, बस मैडम जी जब वापस आई तो मेरी ज़िंदगी उजाड़ हो चुकि थी।

पड़ोस की राधा भाभी को इनकी और पिताजी के खाने की ज़िम्मेदारी सौंप कर गई थी मैं, वही आज मेरी घर की मालकिन बन गई थी।

मेरी दस साल की मेहनत, दुलार, अपनेपन से सजी गृहस्थी में कब ये सेंध हो गई मैं समझ ही नहीं पाई।

मैडम जी मैंने अपने ससुराल से अधिक कुछ जाना ही नहीं था। एक एक पल, अपमान और पीड़ा से झुलस रहा था, न जाने कितने दिन खुद को समझाया। इतने समय में संतान ना होने पर भी मेरे पति ने मुझे कभी कुछ नहीं कहा था। पति के इसी महान छवि को मन में बार बार बनाती और तोड़ती रहती पर आंसू रुकने का नाम नहीं लेते थे। एक दिन मेरे पति चिल्लाए, 'क्या दिन भर मनहूस चेहरा बना कर रहती हो, राधा को चौ. था महीना लगा है, फिर तुम्हें तो खुश होना चाहिए, मेरा बच्चा, तुम्हारा बच्चा भी तो है।'

मैं अवाक देखती रह गई।

मेरे घर में रहते हुए ही वंश को बढाने का काम हो चुका था, फिर मैं किस भरम में

थी?

मेरा बच्चा? कह कैसे दिया उसने?

मेरे पति ने कभी मुझे कोई एहसास भी नहीं होने दिया।

हर तरफ अँधेरा ही अँधेरा था। पति पत्नी का रिश्ता कितना हल्का, स्वार्थी और कमज़ोर होता है, रेत के महल सा सब कुछ सरक गया एक पल में। सबसे बड़ी बात सारे घर की मूक स्वीकृति भी थी इस सब में।

और मैं पराये घर से पराये घर आई औरत जिसको जीने का कोई बहाना भी नहीं मिल रहा था।

पूरे दो दिन मैं चुप्पी की चादर में लिपटी उसी घर में पड़ी रही, राधा से मुझे कोई शिकायत थी ही नहीं तो उसका ध्यान रखने में लगी रहती, सोचती कभी तो मेरे पति को अपने किए का अफ़सोस होगा, मैं तो राधा को भी अपना रही थी।

अपने आत्मसम्मान, पहचान और अपनी खुशी सब कुछ कुर्बान किए जा रही थी मैं। तकदीर और भगवान के भरोसे मैं दिन काट रही थी।

मेरे चारों तरफ बस एक सन्नाटा था, खुद अपने से कहती और अपने को ही सुनाती। कोई राधा के बारे में पूछता तो कहती, तबियत खराब है बेचारी की, सो अपने घर रख लिया है, कहाँ जाएगी बेचारी।

मैं सोचती बाहर किसी को पता लगा तो 'मेरे घर' की ही बदनामी होगी।

मन में तो मैं जानती थी कि मैं सिर्फ़ एक सुविधा हूँ, मेरे पति जब मुझसे ठीक से बात करते तो मैं समझ जाती कि अब उन्हें बस एक औरत चाहिए, फिर वो मैं हूँ या कोई और, क्या फ़र्क पड़ता है।

नियति को कुछ और ही मंजूर था, एक दिन राधा ने एक कहानी बना कर साबित कर दिया कि मेरा चरित्र ठीक नहीं हैं।

मैंने सोचा आज तो मेरी दस साल पाँच महीने की तपस्या रंग दिखाएगी, मेरे पति मुझे चरित्रहीन तो नहीं समझेंगे, ना जाने क्यों ये झूठी सी आस मेरे मन में जग गई।

लेकिन हाय रे किस्मत! जब उसने मुँह खोला तो मेरे पाँव की ज़मीन को सरका कर ले गया, 'जनक बनने के मोह में उसने जानकी के फरकच्चे उड़ा दिए'।

अब आँखों के आंसू महसूस होने भी बंद हो गए थे। पीड़ा, अपमान किरोंच-किरोंच कर मेरे दिमाग की नसों को फाड़ने लगे।

मुझे लगा मैं पागल हो जाउंगी, मैं अकेले में चीखने लगी। मुझे सिर्फ़ और सिर्फ़ माँ की याद आती। मैं सोचती काश वो मुझे यहाँ से कहीं दूर ले जाए। सीता माता के पास तो उसकी माँ थी जिसने अपना सीना चीरकर अपनी बेटी कों संसार के तानों से बचाया और अपने अंदर समेट लिया। कोई नहीं था मेरे पास, जिस के सामने कुछ कह पाती, पिताजी को बुढ़ापे में क्या दिन दिखाती?

कैसे बताती की नियती ने मुझे कैसे छला है?
मेरे पति ने साफ़ कह दिया कि मुझे 'उसके' घर को छोड़ कर चले जाना चाहिए।
एक दिन मैं सचमुच ही चल दी, जहाँ किराया खत्म हो गया, वहीं रुक गई।
गाँव की एक लड़की मिली जिसने मालिक से मिलवाया और मैंने यहाँ काम शुरू कर दिया।
अब सब कुछ भूलकर मैंने स्कूल को ही अपना घर बना लिया।
हर कदम अकेले चलते आज दस साल हो गए मैडम जी, मेरी आत्मा हर दिन भगवान से पूछती है, मेरा दोष क्या था?
मैं क्यों ज़िंदा हूँ?
मैं मर क्यों नहीं जाती?"

अचानक तेज़ हवा से खिड़की की आवाज हुई।
मेरी निद्रा भंग हुई। छूकर देखा तो मेरी आँखें नम थी।
इतना संघर्ष, निरपराधी होते हुए भी सज़ा काटने की पीड़ा, और उस पर कभी किसी का एहसान न लेना। सभी दृश्य डरावने साये की तरह मेरे दिमाग में तैरने लगे।
"तुम्हारे पिता?"
"वो अब नहीं रहे।"
"तुम्हारे पति और राधा?"
"उनके यहाँ बेटी हुई थी। नाम रखा मालिनी। पर वंश बढ़ाने के नशे में, मालिनी पर पिता के प्यार की छाया भी न पड़ी। तानों से तंग आकर राधा भी संतान से पीछा छुड़ाकर किसी और के साथ चली गई। अब तो सरकारी स्कूल में पांचवी में पढ़ती है मालिनी। मैडम जी, जो भी हो, उसमें मेरे पति का भी तो खून है।"
अंतिम शब्द मुझे अंदर तक हिला गए, आखिर भरम की भी कोई सीमा होती है।
मेरी आवाज अब गुस्से, वितृष्णा और करुणा के मिल जाने के कारण सम्पूर्ण कड़वाहट से भर गई।
"जानकी, क्या इतने साल उसने तुम्हारी खबर भी ली जो आज तुम उसकी डायरी बनी बैठी हो, तुमने तो सब कुछ छोड़कर नई शुरुआत की है, क्यों पलटती हो वो पन्ने जिसमें तुम्हारे अपमान की काली स्याही के सिवा कुछ नहीं।"
मैं उसे सांत्वना देने का असफल प्रयास कर रही थी, पर वो कुछ और ही सोच रही थी, जैसे मेरे शब्द गूंगे हो गए थे।
अपनी ही धुन में बोली, "बहुत बीमार है वो, राधा से धोखा खाया है न, सहन नहीं कर पाए होंगे।"
"क्या उसने तुम्हे बुलाया है?"
"नहीं मैडम जी, सुना है अब अकेले रहते हैं, मैं खुद को रोक नहीं पाती, और

फिर 'गलती' किस से नहीं होती?"
कहते-कहते उसका गला रुंधने लगा।
मैं हतप्रभ उस जाहिल औरत को देखती रह गई, क्या कोई पुरुष कभी इस तरह सुलह और माफी के कदम बढ़ा सकता है? नहीं, आज तक तो कभी नहीं सुना गया, अपवाद भी नहीं।
मैं कहना चाहती थी कि ज़माना बहुत बदल गया है।
वुमन एम्पावरमेंट की सारी शब्दावली एक पल में मेरे ज़हन में कौंध गई।
पर जानकी के अनुभव के आगे सब खोखला सा हो रहा था।
मैं बस चुप हो गई।
जानकी अगले दिन अपने घर चली गई, मेरे लिए असंख्य प्रश्न और एक व्याकुलता छोड़कर, मैं भी उसके आने का इंतज़ार करने लगी।
इस बार जानकी गई तो दो सप्ताह तक नहीं आई।
सब आपस में बात करते, "आखिर जानकी गई कहाँ है?"
कोई उसका घर भी नहीं जानता था।
अब बारिश मध्धम होने लगी थी, अंकुर फूटने लगे थे, मौसम बदल रहा था, सब सूखी सी ज़मीन पर बूंदे पड़ती तो सोंधी-सोंधी खुशबू से मन महकने लगता।
सोमवार की अलसाई सी सुबह मैंने चाय बनाकर रखी और खिड़की खोल कर बाहर देखने लगी, दूर गेट के पास रिक्शे से उतरती दो आकृतियाँ दिखाई दी।
एक बार लगा नज़र का धोखा है, पर नहीं, ये तो जानकी थी, फिर साथ में क्या मालिनी थी?
नहीं, ऐसा कहीं होता है भला? मेरे मन में तर्क वितर्क का युद्ध चल रहा था।
वो भी मेरे ही क्वाटर के तरफ आ रही थी, मैंने उसके खटखटाने से पहले ही अधीरता से दरवाजा खोल दिया।
"जानकी ये क्या?"
"मैडम जी वो नहीं रहे, उन्हीं का दाह संस्कार करके आई हूँ, पहले मैं भी इसे अपना नहीं पाई। फिर सोचा जब इस जानकी के पास जननी नहीं थी, तो उसके पास भी कोई आसरा नहीं था, उसके आंसू भी दुनिया भर के लिए बेमानी थे, उसके बिखरने पर उसे सहेजने वाला कोई नहीं था, भरी दुनिया में कोई नहीं था जो आत्मा की निकलती चीख कां समझ सके।
मैं संसार में एक और 'जानकी' नहीं देखना चाहती।"
मैं एकटक उस सच्चाई से चमकते चेहरे को देख रही थी,
नारी क्रांति की दलीलें धुंधली होने लगी।
मेरे सारे ज्ञान और मनोविज्ञान के शब्दकोष में इस भावना के लिए कोई यथोचित शब्द नहीं था, ऐसा अद्भुत जीवन दर्शन 'एक और वैदेही' का ही हो सकता है।

हॉस्टल के रंग

कहाँ गए वो हॉस्टल के रंग-ढंग,
यूं बीते जो दिन दोस्तों के संग।

मेस का खाना तो फिर भी कर लें हजम,
पर लौटा दे कोई वह मीठी-सा लड़कपन।

रात-भर होते वे गप्पे जो कमरे की
महफिल में,
यूं छोड़ गई एक छोटी-सी मोहर
इस दिल में।

किताबों से तो होती मुलाकात
परीक्षा की पिछली रात,
लेकिन परीक्षा से ज़्यादा तो डराती
जन्मदिन वाली लात ।

अब तो मानो जिंदगी हो गई पतझड़ के
मौसम जैसी,
और वो हसीन यादें मन में बह रही
बारिश के मौसम जैसी।

-सात्विक वत्स

दृष्टिकोण

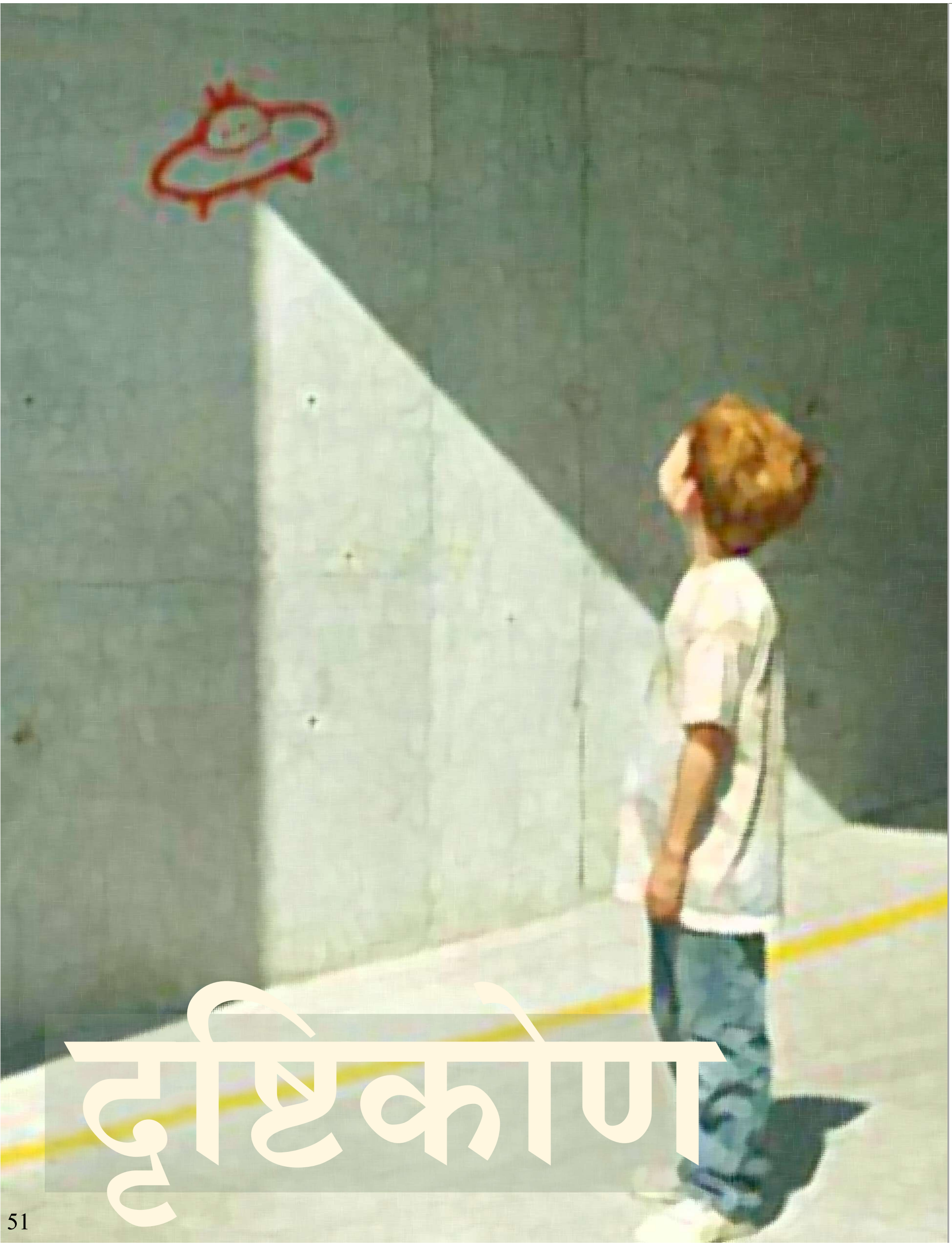

लॉकडाउन के कठिन समय में, घर पर बैठे, कुछ दार्शनिक विचारों ने मेरे मस्तिष्क को घेर लिया। मसलन ये दुविधा कि सामाजिक गतिविधियों पर पाबंदी लग जाने से क्या संसार सचमुच ठहर जाता है? क्या एक ही घटना के विश्लेषण के अनेक तरीके, सही हो सकते है? क्या कोई एक सही तरीका होता भी है या सारे तरीके एक वस्तुनिष्ट विचार से सही हैं? एक अंतरिम रूकावट को संपूर्ण स्थिरता का प्रमाण समझ लेना, तर्क की कसौटी पर खड़ा नहीं उतरता। परन्तु इस पृथ्वी पर भाँती–भाँती के प्राणी की विभिन्न विचारधारा हमारे इस अनुभव को पता नहीं क्यों एक अनोखा आयाम देती है। स्थिरता के प्रारूप में भी गतिशीलता की एक ध्वनि सुनाई देती है, जो इस संसार के कण कण में उपस्थित है। आकाश से गिरकर जब एक बूँद, पत्तों की परत में शरण लेती है तो वो पहली नजर में भले ही स्थिर क्यों ना दिखाई दे, ध्यान से निरीक्षण करने पर, उसको धीमी गति से आगे बढ़ाती हुई ऊर्जा का आभास होता है। फिर भी जब किसी व्यक्ति से, जो ज्यादा विचार–विमर्श करने वाला नहीं है, पूछा जाए कि क्या वो बूँद स्थिर है तो अक्सर ही उसका जवाब हाँ होता है। जब वही बूँद कुछ देर बाद, टपक कर धरती की गोद में बसने वाली होती है, तब उसका जवाब खोखला साबित हो जाता है। मगर अब, अपनी छवि बचाने के लिए, वो कहता है, ष्भाई–साहब जिस समय मैंने देखा उस समय तो रुका हुआ था, अब बीच के समय में जो घटा उस से मेरा क्या लेना–देना। अब इनसे कौन बहस करे कि गति प्रदान करना तो समय का काम नहीं, फिर समय के गुजरने से इस प्रक्रिया का क्या संबंध? इस अनुभव से मेरा ध्यान, इसी विषय के संदर्भ में, समय की ओर चला जाता है।

समय की अनुभूति हर व्यक्ति को अलग प्रकार से होती है, जो उस व्यक्ति की वर्तमान अवस्था पर निर्भर करती है, जबकि वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार तो समय की गति सबके लिए एक सामान है। यह विडम्बना हमारे प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं करती, बल्कि इस विरोधाभास से जीवन का एक विचित्र पहलू हमारे सामने उभर कर आता है। सिद्धांत और अनुभव हमेशा तालमेल नहीं रख सकते क्योंकि एक ही चित्र के अनेक प्रारूप संभव है। यह बात न जाने कितनी बार हमारे सामने आती है लेकिन हम इसे नजरअंदाज कर देते है क्योंकि हमें शायद बचपन से ही एक सीधी रेखा में चलना सिखाया गया है। अलग नजरिए को हमेशा दिग्भ्रमित होने का संकेत माना गया है। हमारे विश्वास का आधार कभी कभी इतनी कमजोर बुनियाद पर निर्मित होता है कि हम वास्तविकता और मृगतृष्णा में भेद ही नहीं कर पाते। कितनी ही बार हम सच्चाई तक पहुंचने के बजाय कही–सुनी बातों पर अपनी राय बना लेते हैं और चाहे कितने भी सबूत इन विचारों को गलत साबित करते हों, हमारे पूर्वाग्रह हमें अडिग और हठी बना देते हैं, क्योंकि हमारे सोचने का तरीका ही हमें सबसे सात्विक मालूम पड़ता है!

हमारी यही प्रवृत्ति समाज में सौंदर्य का मापदंड भी स्थापित करती है। चंद्रमा को कई बार खूबसूरती के उदाहरण में प्रस्तुत किया जाता है, क्योंकि उसकी रौशनी की चमक हमारे आँखों को चौंधियाँ देती है। उसके चेहरे पर मौजूद तमाम दाग धब्बों से हमें कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन अगर रास्ते पर कोई व्यक्ति मिल जाए जिसके चेहरे पर दाग मौजूद हैं, तो वो बेचारा तुरंत आलोचना का शिकार बन जाता है। उसके व्यक्तित्व का सौंदर्य निरर्थक हो जाता है और वो बदसूरती का प्रतीक बन जाता है। इस पैमाने का दोगलापन समाज में व्याप्त सीमित दृष्टिकोण का सबसे सटीक चित्रण है। किसी बाहरी दोष से किसी के आतंरिक मनोदशा को नजरन्दाज कर देना काफी प्रत्यक्ष रूप से मूर्खता लगती है, परन्तु फिर भी अधिकांश लोग इस व्यथा से अनजान हैं।

आप सोच रहे होंगे कि ये सारे विचार मेरे शुरुआती प्रश्नों से कैसे संबंधित हैं? दरअसल, ये विचार उन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में उत्पन्न होते हैं। ये व्यथा हमारे वास्तविकता और दृष्टिकोण के आपसी संबंधों को रेखांकित करती है, क्योंकि हमारा दृष्टिकोण ही हमारी वास्तविकता को आकार देता है। हम उसी प्रकार के प्रश्न पूछते हैं जिस प्रकार के जवाब हम सुनना चाहते हैं द्य हम उन्हीं धारणाओं को अपने तर्क का आधार बनाते हैं जो हमारी सीमित परिभाषा का हिस्सा है। मूलतः हमारी दृष्टिकोण की सीमा हमारी सोचने की शक्ति को बाँधकर रखती है, जबतक हम उसे चहुमुखी रूप से विकसित ना कर सकें। दृष्टिकोण का दायरा एक समुद्र की भाँती फैला हुआ है, जिसके सतह पर तो कई लोग शांति से तैर रहे हैं, लेकिन उसकी गहराइयों में गोते लगाकर मोती चुनने का साहस केवल कुछ को है।

––प्रांजल सिंह

जिंदगी का बोझ ढोता आदमी

फटता दिल छूटता साहित्य, घुटता इंसान लुटता जहान, टूटते सपने रूठते अपने, भटकते कदम निकलता दम, पलटती सत्ता उलटता तख्ता, बिखरता समाज बदलता अंदाज, मरती संवेदनाएं घटती जिंदगी। सचमुच ये कुछ ऐसी विसंगतियाँ है जिससे बच पाना कठिन ही नहीं बल्कि आज के युग में गंभीर चुनौती बन गई हैं। जागता हुआ भी आदमी मूर्छा की नींद सो रहा है। फिर कैसे मिलेगा अमन और चौन, जब आम की चाहत में आक के बीज बो रहा है। रचता है औरों की समस्याएँ सुलझाने का स्वांग, मगर ताज्जुब है, खुद अपनी ही उलझनों भरी जिंदगी का बोझ ढो रहा है। सोने की दमक और सिक्कों की चमक में हर आदमी नकलीपन में वक्त खो रहा है। हर चहरा बनावटी है। हर खुशी दिखावटी है। हर वस्तु मिलावटी है। यकीन हो तो कैसे, जब धोखा दे जाते हैं अपने ही जैसे। जमाने की इस क्रूर नजाकत को दे खकर लगता है ऐसे।

आसुरी चाह में आह भरते हुए जी रही जिंदगी आज मरते हुए,
रेट की राह में पाँव धरते हुए, डोबती सांस है सिंधु तरते हुए।
हाथ पतवार की दूरियाँ बढ़ रही, डूबती इस तरह नाव तरती नहीं,
स्वर्ण शैल हों चाहे जितने खड़े, मानवी चाह की दाह मरती नहीं।

ये सब वे हालात हैं जो इस बात को जाहिर कर रहे हैं कि मनुष्य जी नहीं रहा है बल्कि अपनी साँसों को पूरी कर रहा है। सवाल सुविधायों की मात्रा का नहीं है अपितु प्राप्त साधनों को जुटा कर सही ढंग से जी पाने का है। अतः इसी बीच यह जानना जरूरी है कि वाकई में वे कौन से तत्व हैं जो मनुष्य को संतुष्टि एवं आनंद से वंचित कर रहे हैं। यद्यपि अनेक धर्मगुरुओं, शस्त्रकारों और ऋषियों ने अपने ढंग से इस प्रश्न को समाहित करने कि कोशिश कि है, कि युगीन परिस्थितियों में अनुव्रत का दर्शन इस दृष्टि से सर्वथा नवीन और समीचीन प्रतीत होता है। अनुव्रत अनुशास्ता आचार्याश्री तुलसी ने इस समस्त अशांति हेतु असंयम को माना है। यह बिना किसी तर्क वितर्क के स्वतः सिद्ध सत्य है कि जितना जितना शैली में असंयम बढ़ा है, उतना उतना व्यक्ति का जीवन अशांत, तनावग्रस्त और रसहीन बनाता जा रहा है। संयम एक ऐसा तत्व है जिसे अपनाकर किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति शांतिपूर्ण, संतुलित और आनंदित जीवन जी सकता है। सुख कि बात तो यह है कि इसे बाहर से एकत्रित करने कि आवश्यकता नहीं वह व्यक्ति के भीतर स्वतः प्रकट होने वाला तत्व है। जब यह प्रकट होता है तब जीवन का वास्तविक आनंद आने लगता है। पर नियति कि यह कैसी क्रूर विडम्बना है कि आदमी चाहकर भी अपने आनंद कि अखूट सम्पदा लूट नहीं पता, यही वजह है कि जिसे जीना है, उसे जीना नहीं आता और जिसे मरना है उसे मरना नहीं आता। यही अंतर्वेदना किसी कवि के काव्य में इस रूप से फूट पड़ी कि जीना है तो पूरा जीना, मारना है तो पूरा। बहुत बड़ा अभिशाप है जगत में आधा जीना आधा मरना। बड़ा विचित्र है जीने और मरने का यह खेल। बड़ा मुश्किल है इस खेल में हार और जीत का फैसला कर पाना। कभी कभी स्थितियाँ इतनी संगीन बन जाती हैं कि जब जिंदगी पहाड़ से भी अधिक बोझिल, पतझड़ से भी अधिक वीरान एवं मरघट से अधिक सुनसान लगाने लगती हैय गम के इस दौर में तन्हाईयों के शोर में दिल कि टीस तब इस तरह कराह उठती है कि

फिरते हैं चाहतों का बयांवा लिए हुए,
हम कैद हैं खुद ही में हवालात की तरह।
ये जिंदगी भी जहर के प्याले-सी हो गई,
पीते रहे है हम जिसे सुकरात की तरह।
हम खुद ही हैं एक सवाल देंगे भी क्या जवाब,
मिलिये न हमसे सवालात की तरह ।
सुलझे हुए खयाल किताबों में रह गए,
उलझे हैं हम तो आज के हालात की तरह ।

दिखने में ऊपर से जिंदगी जितनी सुहानी, प्यार भरी सीधी सपाट और सुहानी लगती है, दरअसल, भीतर से वह उतनी ही घुमावदार और काँटेदार होती है। जब जब आदमी यथार्थ की उन पगडंडियों से गुजरता है, तब तब उसे महसूस होता है कि सचमुच कितना कठिन है, जिंदगी की उन हकीकतों से जूझना और प्रतिकूलताओं की आँधी से संघर्षो के झटकों से पारे की तरह बिखर जाते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो संघर्षो की आंच में तपकर कुन्दन की तरह निखर जाते हैं। फर्क इतना ही है जो बिखर जाते हैं वे जीते हुए भी मर जाते हैं और जो संघर्षो की आंच में निखार जाते हैं वे मर कर भी इस दुनिया में अमर हो जाते हैं।

जरूरत है संघर्षो से जूझने की क्षमता तथा साहस को जगाने की। जरूरी नहीं कि हवा का हर झोंका सुहावना हो। जरूरी नहीं कि जिंदगी का पल लुभावना हो। जिनमें प्रतिकूलताओं को झेलने का साहस होता है, वे अमावस के स्याह अंधेरे को भी पूनम के उजाले में बदल डालते हैं तथा पतझड़ के सूनेपन में भी बसंत की चहचहाट भर डालते हैं। इतिहास बनता है जो जीने के लिए लपट बनकर प्राणों को बलिदान करते हैं। हालांकि मरते दोनों ही हैं, बस फर्क इतना है कि मरने के लिए जीने वाले, समय के अनंत गलियारे में खो गए और जीने के लिए मरने वाले, मुर्दा होकर भी इतिहास के आईने में जिंदा हो गए। यह तो सच है कि जिंदगी कि शुरूआत और अंत दोनों ही कुदरत का एक करिश्मा है, पर बात इतनी सी है कि इस करिश्मे में कौन कितने करिश्माई ढंग से जीता है? अनुव्रत और संयम उस करिश्मे का नाम है जो व्यक्ति को संसार की विसंगतियों से बचाकर जीवन और मृत्यु की कला सिखाता है अपेक्षा है इंसान उस कला को अपनाकर जिंदगी के शानदार सफर को जानदार ढंग से तय करते हुए मृत्यु से अमरत्व का आनंद उठा सके। इसी सत्य की मार्मिक अभिव्यक्ति है कवि कि निम्न पंक्तियों में। -

अन्तरिक्ष तक जाने में भी मन को शांति कहाँ मिलती है,
क्षणभर को पर, अपने भीतर जाने में आशा खलती है।
कोई पुस्तक पढ़ लेने से शिक्षा पूर्ण नहीं होती है,
जब तक उसके उपदेशों का जीवन में आचरण न हो।
'मानस' का हृदयंगम तो है मन को अपने वश में करना,
कर्म करते जाओ जीवन में, जीवन हो पर मरण न हो।

-हर्ष

टीम वाणी – सद्धार्थ, व्योम,

निमिषा, अक्षिता, कनिष्क,

रीतिक, आदित्य, भूमि, नितिन, अतीक्षा, अमोल, श्यामल,कृति, प्रखर

माणिक्य, वत्सल, प्रत्युष, मनाल, मोहनीश, मानस, आकाश, आदित्य, अनुज

आर्यन, अदिति, भूषण, हार्दिक, संस्कार, लाम्बा, हर्ष, परीश्री,

वासु, रेहान, शाल्मली